वैष्णव जन

स्वामी अध्यात्मानंद

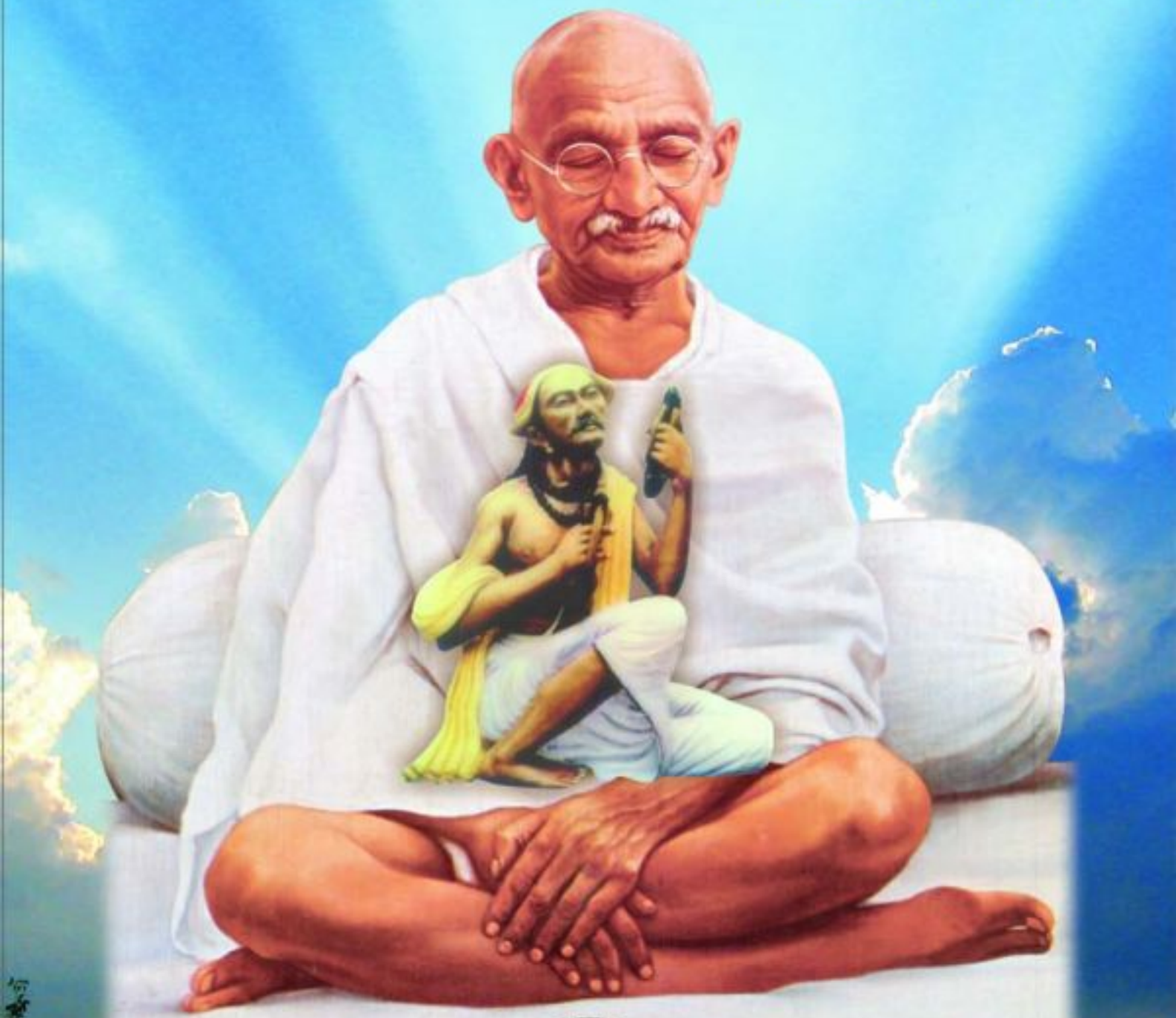

दिव्य जीवन सांस्कृतिक संघ
शिवानंद आश्रम, अमदावाद - ३८००१५.

ॐ

सबका हो कल्याण।
सब रहें सुखी।
कोई न हो दुःखी।
सबका हो मंगल।
पूरब में पश्चिम में; उत्तर में दक्षिण में।
पहाडों में समुंदर में; बन में जंगल में,
जन जन के जीवन में,
शांति हो। शांति हो। शांति हो।
भूमि मंगलम्।
उदक मंगलम्।
गगन मंगलम्।
सूर्य मंगलम्। चन्द्र मंगलम्।
वायु मंगलम्। अग्नि मंगलम्।
जीव मंगलम्। जगत मंगलम्।
मनो मंगलम्। आत्म मंगलम्।
सर्व मंगलम्।
सर्व मंगलम्। भवतु भवतु भवतु।
भवतु भवतु भवतु॥

ॐ

हार्दिक शुभकामनायें

प्रियश्री/सुश्री

_____

_____

प्रभु से मंगलकामना है कि इस शुभ अवसर पर आपको सुंदर स्वास्थ्य, सुखी जीवन, उदात्त विचार तथा पावन प्रेरणा की प्राप्ति हो ।

'वैष्णव जन' आपको सच्चे वैष्णव जन बनने की ओर अग्रसरित करे । आप पर प्रभुकृपा की अनवरत वर्षा होती रहे ।

मंगलमय नववर्ष के लिये हार्दिक शुभकामनायें ।

आपका भवदीय,

_____

_____

वैष्णव जन

वैष्णव जन तो तेने कहीए, जे पीड पराई जाणे रे ।
परदुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे ।
वाच, काछ, मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे ॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे ॥
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमां रे ।
रामनाम शुं ताली रे लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे ॥
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्यां रे ।
भणे 'नरसैंयो' तेनुं दर्शन करतां कुल एकोतेर तार्यां रे ॥

– नरसिंह महेता

प्रत : 3000

प्रकाशक : **श्री दिव्य जीवन सांस्कृतिक संघ**
शिवानंद आश्रम, अहमदाबाद-15
फोन : 079-26861234, 26862345

हिन्दी रूपांतर : **श्रीमती दुलारीबहन वार्ष्णेय**

मुद्रक :
प्रिन्ट विजन (प्रा.) लि.
आंबावाडी बाजार, अहमदाबाद-380 006
टेलिफोन : 26405200, 26403320

टाइपसेटिंग :
हरिओम ग्राफिक्स
हिंमतलालपार्क, अहमदाबाद • टेलिफोन : 26767181

ॐ

नववर्ष
29-10-2008

अजर, अमर दिव्यात्मा!
ॐ नमो नारायणाय,
विनम्र प्रणाम!

नववर्ष की शुभकामनायें । हम प्रभु से राष्ट्रीय अखंडता-एकता और आपके सुखद स्वास्थ्य, समृद्धि, शांति के लिये प्रार्थना करते हैं। सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानंदजी महाराज, गुरुभगवान श्री स्वामी चिदानंदजी महाराज, भगवान श्री विश्वनाथ एवं श्री श्री श्री अष्टलक्ष्मी माता की अनवरत आशिषवर्षा आप पर होती रहे, यही कामना है ।

प्रतिवर्ष हम नववर्ष पर्व मनाते हैं । रोशनी करते है । आइये! हम सब अपने अन्तर्मनों में ज्ञानदीप प्रज्वलित करें और अपने आप को अज्ञान के अंधकार से मुक्त करें ।

आप सदैव ही इस आश्रम के क्रियाकलापों में सहर्ष सहभागी रहे हैं। हमारी विनम्र प्रार्थना है कि आश्रम के सेवा, धर्मार्थ तथा धार्मिक कार्यकलापों में अपना भरपूर योगदान एवं सहभागिता बनाये रखें ।

परमात्मा तथा पूज्य गुरुदेव की कृपा हम सब पर सदैव बनी रहे इसी कामना तथा अथाह आदर-प्रेम-प्रार्थना सहित,

शिवानंद आश्रम
अहमदाबाद

आपका अपना स्वरूप,
श्री गुरुचरण अनुरागी सेवक
स्वामी अध्यात्मानंद
ॐ

प्रस्तावना

दिव्य जीवन संघ, वलसाड में प्रतिवर्ष प्रवचन होते है । इस वर्ष 'वैष्णव जन' विषय पर वक्तृत्व हुआ । अहमदाबाद स्थित वर्तमानपत्र 'संदेश' के ज्ञानयज्ञ में भी यही प्रवचन हुआ ।

मेरा अपना निजी सद्भाग्य है कि मेरा जन्म ब्रह्मलीन श्री नरसिंह मेहताजी के वंश में सोलहवीं पुस्त में हुआ है । हमारे संन्यस्त के पूर्व दिवंगत दादाजी एवँ दादीमाँ श्रीमान् शंकरलाल हाथीभाई वैष्णव तथा सुश्री जनमगौरीजी पूज्य बापूजी महात्मा गांधीजी के आश्रम में वर्धा में चिरकाल पर्यन्त रहे थे । मेरे जन्म के साथ ही मेरी जन्मदात्री माता का देहावसान हुआ था। अतः पूज्य बापूजी के वर्धा आश्रम में पूज्य दादीमाँ की परवरिश में बाल्यकाल में पूज्य बापू और उनके पवित्र आश्रम के संस्पर्श का सौभाग्य प्राप्त हुआ । जीवन विधि की यात्रा में अनेक आरोह-अवरोह के समय इस महामूल्यवान पाथेयने जीवन-कवन पर स्थित-स्थिर रखा ।

संन्यस्त जीवन के पश्चात् प्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप श्री सद्गुरु देव स्वामी चिदानंदजी महाराज का जीवन पूज्य बापूजी महात्मा गांधी के जीवन का मानो एक प्रतिबिंब ही था ।

अतः 'वैष्णव जन' मेरे जीवनयात्रा का सदैव आलोक स्तंभ रहा। यह 'वैष्णव जन' दीपावलि अभिनंदन लघुपुस्तिका 'वैष्णव जन' प्रवचनों का ही संकलन है । पहले उसे श्री सद्विचार परिवारने मुद्रित और प्रकाशित किया। अब दिव्य जीवन सांस्कृतिक संघ के माध्यम से प्रकाशित हो रहा है, उसका गौरव है। श्रीमती दुलारीबहन वार्ष्णेय ने हिन्दी भाषांतर किया एतदर्थ हम इनके भी आभारी रहेंगे । यहाँ जो कुछ कहा गया वह स्पष्ट है । यहाँ किसी भी प्रकार की आत्मप्रशंसा का प्रश्न ही नहीं; फिर भी किंचित् मात्र भी आत्मश्लाघा प्रतीत हो तो सुज्ञ पाठक क्षमा करें।

यह पुस्तिका लेखन नहीं है । अंतःस्फूरण है । यह नववर्ष और दीपावलि हमारे क्षुब्ध जीवनों में वैष्णवत्व की ज्योति से अंतस्थ जीवन आलोकित करेगा ही, यही प्रार्थना है । श्री सद्गुरु देव स्वामी शिवानंदजी महाराज की अहेतुकी कृपा का वरदान सभी पाठकों का बहुविध मंगल करे, यही अभ्यर्थना । ॐ शांति ।

– श्री दिव्य जीवन सांस्कृतिक संघ

'वैष्णव जन'

प्रवक्ता : पूज्य श्री स्वामी अध्यात्मानंदजी

''उद्‌बोधन''

अपने देश में जिस प्रकार एक ज्वलंत समस्या है, शायद उससे भी अधिक जटिल मेक्सीको की चीयापास की समस्या है। चीयापास में रेड इन्डियन के मूल निवासी नागरिकों की बस्तियाँ हैं। बाहर से आई हुई मेक्सिकन प्रजा द्वारा इन मूल रेड इन्डियन पर मानसिक और शारीरिक यातनाएँ और अत्याचार किये जा रहे हैं। यह एक ऐसा कलंक है जिसका मानव इतिहास में वर्णन नहीं है। वहाँ स्त्रीसमाज का हर प्रकार का शोषण हुआ है। उनके बच्चों पर केवल अत्याचार ही नहीं हुए परंतु भविष्य अंधकारमय है। जहां कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता। पुरुष-वर्ग पशु की भाँति नई प्रजा के गुलाम बनकर जी रहा है। उनकी जमीन, जर और जोरू तथा कथित सभ्य और शिक्षित प्रजा के अत्याचारों के तहत त्रस्त है। यहाँ की जनता का किस प्रकार कल्याण किया जाय, इसके लिए विश्वभर के अग्रगण्य धार्मिक अगुआओं की, रेड इन्डियन की बस्ती में दरवाजा बन्द करके परस्पर संवादका आयोजन किया गया।

यह धर्म परिषद ऐसी नहीं थी जैसे कि अन्तराष्ट्रीय धर्म परिषदों में सभी राष्ट्रो के धार्मिक अगुआ अपना मन्तव्य प्रस्तुत करके, अपने धर्म की महिमा का वर्णन करके चले जाते हैं। यहाँ तो कुछ ठोस कार्य करना था। अपना खर्च करके और जिंदगी को खतरे में डालकर, त्वरित चालित लाईट मशीनगन और पिस्तोलों के पहेरे के तहत संवाद करना था। रेड इन्डियन किसी भी स्थिति में मेक्सिकन सरकार के किसी भी अधिकारी के साथ किसी भी प्रकार का वार्तालाप करने के लिए तैयार न थे। इसी लिए हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, जैन, ईसाई, बहाई, सिख, पारसी आदि धर्म

के अगुआओं को इस ''डायलोग'' में शामिल होने के लिए निमन्त्रण दिया गया था। जैन, बौद्ध, सिख, हिन्दू धर्मात्माओं की ओर से भारत के शिवानंद आश्रम हृषीकेश के दिव्य संत पूज्य श्रीमद् स्वामी चिदानन्दजी, पूज्य श्री दलाईलामाजी और करुणामूर्ति मदर टेरेसा को इस डायलोग में शामिल होने के लिए निमन्त्रण दिया गया था। इस पर सब सम्मत भी हुए थे। मदर टेरेसा के अचानक बीमार हो जाने के कारण, जिस बीमारी के बाद वे कभी स्वस्थ न हो सकी, जा नही सकती थी। दलाई लामाजी ने भी जाने के लिए अपनी सम्मति नहीं दी। स्वामी चिदानंदजीने कहा ''यदि ये दोनों संत नहीं जायेंगे तो मैं इतनी लम्बी यात्रा नहीं कर सकूंगा।'' तब विस्कोसन युनिवर्सिटी से एक प्रोफेसर अमेरिका से भारत आये. ''भारत तो शान्ति का देश है। यह भावना थी कि उसका उचित और यथेष्ट प्रतिनिधित्व होना ही चाहिए।'' मैं उस समय अमेरिका में था। पूज्य गुरुदेव श्री चिदानंदजी महाराज ने मेरे नाम का प्रस्ताव रखा। मेरा सद्‌भाग्य ही समझिए कि मुझे उपर्युक्त तीनों विभूतियों के प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य मिला। प्रातःकाल से शाम को देर तक रेड इन्डियन की बस्ती में १८ धार्मिक अगुआ जाते थे। दोनो ओर बन्दूक की नलियाँ तकी हुई रहती। ये नेटिव-मूल निवासी रेड इन्डियन मुंह और माथे पर कपडा बांधकर रहते। हमारे साथ एक मेक्सिकन सरकारी अधिकारी को ईसाई पादरियों का लम्बा कुर्ता पहनाकर ले जाया जाता. जिससे वह सच्ची परिस्थिति और उनकी कथा से परिचित हो सके।

इस डायलोग में अमेरिका से पधारे इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस श्री गोलोंब हेरी का आग्रह था कि रात को सबकी सामूहिक प्रार्थना तो होनी ही चाहिए जिसमें हिन्दु, जैन, बौद्ध, सिख, पारसी का प्रतिनिधित्व तो मुझे अकेले ही करना था। इसलिए इन सब धर्मो की प्रार्थना को मुझे अकेले ही करनी होती। इसके साथ ही मेरे मन में यह भाव उठा कि ''वैष्णव जन'' पद अचूक गाया जाय ओर उसकी व्याख्या भी की जाय।

इसके बाद एक बार अमेरिका गया तो उस अवधि में इस पुलिस अधिकारी की ऑफिस में जाने का मौका मिला। यह देखकर आश्चर्य

हुआ कि उसके पीछे दीवार पर पूज्य बापू महात्मा गांधीजी का खूब सुंदर बडा चित्र - बापू प्रार्थना में बैठे हैं, लगा हुआ था । इससे अधिक आश्चर्य यह हुआ कि उनकी मेज पर अमेरिकन ध्वज के दोनो ओर पूज्य बापू, महात्मा गांधी और नरसिंह मेहता के चित्र भी थे । नरसिंह मेहता तो शायद जूनागढ के मांगरोल के तलाजा तक ही गये होंगे । वे द्वारिका नहीं गये थे । उनकी हुण्डी द्वारिका गई थी । तथापि नरसिंह मेहता की अमर कृति 'वैष्णव जन' का गीत भारतरत्न एम. एस. सुब्बुलक्ष्मीने यूनेस्को में अर्थ समझाकर प्रस्तुत किया था ।

वैष्णव जन

इस ''वैष्णव जन का वैष्णव'' विष्णु का भक्त नहीं है । शिव के भक्त को शैव, शक्ति के भक्त को शाक्त, गणपति के भक्त को गाणपत्य, सूर्य के भक्त को शौर्याण, श्रीराम के भक्त को रामानन्दी और विष्णु के भक्त वैष्णव कहे जाते हैं । परंतु नरसिंह का वैष्णव तिलक त्रिपुण्ड या कण्ठीमाला वाला नहीं है । इस वैष्णव के लिए हिन्दु, मुस्लिम, जैन, बौद्ध का बन्धन भी नहीं है । नरसिंह पूछते हैं कि जो शिखासूत्र या तिलक-त्रिपुण्ड के साथ पैदा हुआ है क्या उसी मनुष्य को हिन्दू कह सकते हैं ? ऐसा कभी नहीं होता । क्योंकि ईसाई परिवार की संतान गले में क्रोस लटकाकर जन्म नहीं लेती । किसी भी मुस्लिम परिवार का बालक सुन्नत के साथ, सिख बालक हाथ में कडा या कृपाण के साथ जन्म नहीं लेता । इसी प्रकार कोई भी सफाई कर्मचारी का बालक हाथ में झाडू लेकर पैदा नहीं होता । जो बच्चा पैदा होता है मानवशिशु के रूप में ही पैदा होता है । ये सब ''इन्सान की औलाद हैं ।'' अतः इन्सानियत ही एक मात्र धर्म या मजहब है । इसी प्रकार नरसिंह को सफाई कर्मचारी की मित्रता भी मंजूर है जो निष्पाप है, वही हरि का भक्त है । वह क्या काम करता है, यह तो प्रश्न ही नहीं । यह प्रश्न ही गौण है । हरि के ऐसे भक्त का आलिंगन किया जा सकता है । धुले हुए सफेद वस्त्र पहन कर छल, कपट, दंभ की ओढनी ओढने वाले लोगों का स्पर्श भी हो तो उसे अस्पृश्य मानकर नहा लेना ही उचित होगा । प्रामाणिक, सत्य और अहिंसा से परिपूर्ण जीवन जीने वाले सफाई कर्मचारी का जीवन वन्दनीय है ।

नरसिंह का ''वैष्णव'' गीताजी के १२वे अध्याय के भक्त के लक्षणों से समृद्ध है ।

''अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकार समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नो द्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स में प्रियः ॥ १६ ॥''

भगवान श्रीकृष्ण गीता के १२वें अध्याय में श्लोक १३ से २० तक भक्त के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं - ''जो किसी प्राणी के साथ द्वेष नहीं करता, सबके साथ मैत्रीपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है, आसक्ति और अभिमान से रहित है तथा क्षमाशील है, जो सदा संतोषी, स्थिर बुद्धिवाला, आत्मसंयमी एवं दृढसंकल्पवाला है, जिसका मन और बुद्धि समर्पित है ऐसा भक्त मुझे प्रिय है ।

जो किसी को भी दुखी नहीं करता, किसी से भी दुखी नहीं होता, जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेग से रहित है, जिसकी कोई इच्छा नहीं है, पवित्र है । जो कुशल पक्षपात रहित और दुखों से भी मुक्त है, जो आरम्भ से ही परित्यागी है वह मेरा भक्त है ।

जो हर्षित नहीं होता, जो घृणा या शोक नहीं करता, जिसकी कोई कामना नहीं है, शुभ और अशुभ के बीच द्वन्द्व की अनुभूति नहीं करता और जो भक्तिभाव से पूर्ण है ऐसा भक्त मुझे प्रिय है ।

जो शत्रु और मित्र के साथ समान आचरण करता है, मान और अपमान के बीच समदृष्टि रखता है, ठण्डी-गर्मी या सुख-दुख के बीच समभाव रखता है, जो आसक्ति रहित है, जो निंदा-स्तुति में कोई भेद नहीं रखता, जो मौन धारण करता है और वाणी पर संयम रखता है, जो कुछ मिले उसी में संतोष मानता है, किसी निश्चित स्थान पर निवास नहीं करता, जिसका मन स्थिर और भक्ति पूर्ण है, वही मनुष्य मुझे प्रिय है ।''

श्रीकृष्ण कहते हैं - ''मैंने जो कुछ कहा वह धर्म का अमृत है।'' इन आठ श्लोकों को हम 'अमृत अष्टक' का शीर्षक दे सकते हैं। नरसिंह का वैष्णव ऐसे भक्तों के हृदयमें प्रकट होता है। नरसिंह के मन में कोई दंभ, छल या कपट नहीं है। नरसिंह डिप्लोमेट भी नहीं है। वह तो सीधा ही कहता है कि जो दूसरों के दुख से दुखी होता है और दूसरे किसी के भी दुख को देखकर सहायक बनने का प्रामाणिक प्रयत्न करता है, इतना ही यथेष्ट है, वही वैष्णव है।

पराई पीड़ा

वर्तमान समाज की एक दुष्कर समस्या पर पीड़ा है। नरसिंह को ५२५ वर्ष हो गये। युग परिवर्तन हुआ। जीवन के उच्चतम मूल्यों का ह्रास हो रहा है, वहाँ इस पराई पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर कुछ योग्य करना उचित था।

मैं अपना ही उदाहरण देता हूं। हम दोपहर के १२ बजे किसी संत के पास जा रहे थे। रास्ते में एक बहन बडी तेजी से स्कूटी पर जा रही थी और गिर गई। हमने अपना वाहन रोका। भीड जमा हो गई। किसीने उसका मोबाईल ले लिया। किसीने उसका पर्स ले लिया। किसीने स्कूटी खडी करके उसकी चाबी ले ली, परंतु रास्ते में गिरी हुई बहन की सहायता के लिए लेशमात्र भी प्रयत्न नहीं किया। हमने उस बहन को अपनी गाड़ी में पीछे की सीट पर बैठा दिया और उसकी चाबी, पर्स, मोबाईल भी प्राप्त कर लिए। स्कूटी एक तरफ खड़ी कर दी फिर उसके घर का दूरभाष नंबर पूछा। उसके पति को समाचार देकर निकट की चेरिटेबल अस्पताल में आने को कहा। बहन का घुटना घायल हुआ था। रास्ते में कराह रही थी। उससे पूछा 'तुम गाडी तेज़ क्यों चला रही थी ?' उसने कहा- 'मुझे बेंक जाने में देरी हो रही थी, मैं बेंक में नौकरी करती हूं।'

होस्पिटल में उसके पति, माता-पिता-पडौसी सब इकठ्ठे हो गये थे। सबके मुंह से एक ही बात निकली - 'अरे ये तो स्वामीजी थे, इसलिए वे सम्हालकर यहां लाये। नहीं तो कोई पर्स भी ले जाता, मोबाईल भी ले जाता, आदि बातें हुई। उसे दाखिल किया गया। उनके पतिने ४५

रू. देकर केस निकलवाया। ३००० रू. एडवांस में भरे। उनके पति को वह स्थल दिखाया गया जहां बहन गिरी थी। पतिदेव ओर उनके पडौसी स्कूटी को लेकर घर चले गये। बात पूरी हुई। हम किसी संत से मिलने जा रहे थे, उसके दौरान यह घटना घटी।'

परपीड़ा की सच्ची बात तो इस प्रकार है।

दस दिन के बाद होस्पिटल के एक डॉक्टर का फोन आया ''अपने ड्राईवर को हमारे होस्पिटल में भेजना। उस बहन को जो चोट लगी है उसका खर्च ३०,००० रूपये हुआ है। यह राशी ज़मा करें। और यदि ये रकम जमा न की गई तो उनके विरुद्ध पुलिस केस करना पडेगा।'' रास्ते में कोई जल्दबाजी में जाते हुए गिर पडे, दोपहर की धूप में दूसरे की पीड़ा देखकर उसे होस्पिटल में पहुँचाएँ तो सब अपना आभार मानें। होस्पिटल में स्वस्थ होने के बाद पहले डॉक्टर ने फिर होस्पिटल के ट्रस्टीने आश्रम से उगाही की, यह कहां का न्याय था ? उनके कहने का आशय यह था ''स्वामीजी उसे लेकर आये थे इसलिए आश्रम उसका पैसा भरेगा।'' जो बहन बेंक की एम्प्लोई है, जो अपने पति के साथ १५ दिन के बाद आस्ट्रेलिया जाने वाली है उसके लिए आश्रम ३०००० रुपये की खैरात करे, इसकी क्या आवश्यकता है ? एसी घटना घटने के बाद दूसरे की पीड़ा जानने ओर दूर करने की इच्छा मन में फिरसे किसे पैदा होगी ?

श्री सद्गुरुदेव स्वामी शिवानन्दजी महाराजने ३०० पुस्तकें लिखी हैं उसका सारांश छः शब्दो में दिया है - सेवा, प्रेम, दान, पवित्रता, ध्यान एवं आत्मसाक्षात्कार। गुरुदेव स्वामी शिवानन्दजी की सेवाओं का कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत था कि लोग उन्हें शिवानंदजी नाम से कम लेकिन ''सेवानंद'' नाम से पहचानते थे। उनकी उदारता के कारण लोग उन्हे 'SEVANANDA' के नाम से अधिक पहचानते थे। उनका कथन था - 'जिन्हें आवश्यकता है उनकी सेवा करो और जो तुम्हें लात मारे उनकी भी सेवा करो।' चित्रभानुजी का पद है न ?

'मार्ग भूले हुए जीवन-पथिक को मार्ग प्रदर्शित करता रहुँ।
करे यदि उपेक्षा वह मार्ग की फिर भी समता चित्त धरूँ।'

हमें फिर कभी रास्ते में इस प्रकार कोई पड़ा हुआ मिला तो हम उसे होस्पिटल अवश्य पहुंचायेंगे, लेकिन स्पष्ट कहकर आयेंगे कि यह हमें रास्ते में पड़ा हुआ दिखाई दिया, इसके साथ हमारा मानवता के अतिरिक्त कोई दूसरा सम्बन्ध नहीं है । यदि वास्तव में वह व्यक्ति निर्धन या गरीब हो, खाने-पीने के फांफे हो तो सभी मेडिकल बिल की अदायगी कोई कठिन नहीं है । लेकिन सफेदपोश धुले हुए कपडे पहन कर स्वार्थ और दंभ से ग्रसित ऐसे लोगों के लिए नरसिंह मेहता का भजन वैष्णव जन सच्चे अर्थ में जीवन पथप्रदर्शक बन जाता है ।

परोपकार

अपनी धर्म व्यवस्था अत्यन्त संतुलित थी । मुसलमान मित्रों के लिए नमाज़, रोज़ा, फित्र, ज़कात और हज़ आवश्यक माने जाते हैं । हज़यात्रा पर सभी जा सकें या नहीं । परन्तु अपनी कमाई में से प्रति रूपया ढाई आना जकात और फित्र के रूप में अपनी कौम की सहायता के लिए अत्यन्त आवश्यक माना जाता है । ईदऊल जुआ तो दूसरी ईद होती है, इदऊल फितर यह ईद रोज़ों के अन्त में रमज़ान महिना पूरा होने पर आती है । इस दिन यह फितर या दान के रूप में मस्जिद के मौलाना अथवा 'अंजुमने इस्लाम' के प्रमुख को यह रकम दी जाती है । यह रकम जाति में जरूरतमंद मोमीन लोगों को देते है । ईद की नमाज तो प्रत्येक मुसलमान उत्साहपूर्वक अदा करते है । हर नमाज़ का नियम है कि कमर के नीचे का वस्त्र घुटना न दिखाई दे इतना नीचा, कमर के उपर का वस्त्र कोहनी खुली न दिखाई दे, इतनी लम्बी बाँह होनी चाहिए और सिर ढका होना चाहिए । कौम, समाज में रहने वाले खुदा के अनेक बंदों को, जिनके पास पर्याप्त वस्त्र नहीं है, उनके लिए वस्त्रों की व्यवस्था करती है । ईद के दिन सैवइयाँ तो प्रत्येक के घर बननी ही चाहिए । इसके लिए भी कौम निम्नस्तरीय परिवारों की खिदमत में सैवइयों की व्यवस्था करती है ।

इसी प्रकार हमारे पर्वो में भी व्यवस्थित व्यवस्था थी । दिवाली के दूसरे दिन नये वर्ष के दिन मन्दिरों में अन्नकूट होता है तब लोग अपने-अपने मुहल्ले के मन्दिरों में अपने घरों में तैयार की गई मिठाई, नमकीन,

पकी रसोई पहुँचाये, ऐसा रिवाज था । इसका उद्देश्य जरूरतमंद लोगों को प्रसाद मिले ऐसा था ।

मन्दिर के पुजारी का ऐक ऐसा व्यक्तित्व होता है कि उसके पास छोटे-बड़े सब अपने-अपने हृदय की बातों को खोल देते हैं जिससे अपने मुहल्ले में कौन भूखा है, कौन नंगा है, उसका पता पुजारी को होता था । इसलिए प्रभु के प्रसाद के रूप में दिवाली के दूसरे दिन नये साल में जरूरतमंदों के परिवारों को मिठाई, नमकीन पहुँचाना पुजारी का उत्तरदायीत्व होता था । मकरसंक्राति के पर्व पर भी इसी प्रकार वस्त्रोंका दान, अक्षयतृतीया को धान (चावल) का दान देने की प्रथा थी ।

जो दान देता था उसे मालूम नहीं होता था कि यह दान कौन लेता है और न पता होता था कि यह दान कौन देता है ? इसलिए कहीं भी मानहानि की गुंजाइश नहीं थी । और समाज में संतुलन बना रहता था । अतः 'परदुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे ।' ये पंक्ति अपनी आँखों को नई जीवन दृष्टि देती है ।

दान और सेवा

यहाँ हमारे सामने जीवन के दो कर्तव्य हैं । एक दान दूसरी सेवा । जब हम दूसरों के प्रति सद्भावना या प्रेम से, श्रद्धा से, संवेदना से प्रेरित होकर उनका कुछ हित करते हैं तो यह दान है । इस प्रकार दान का अर्थ विश्वबंधुत्व है । जड-चेतन, जग-जीव सबके साथ या सभी के प्रति सद्भावना । वहाँ यह भावना केवल निम्नस्तर की है । गरीब है या जरूरतमंद ऐसा प्रश्न नहीं है । 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना है । यह परोपकार है । जाने-अनजाने किसी की भी सहायता करना, उसी को सद्गुरुदेव स्वामी शिवानंदजी महाराज दिव्य जीवन कहते हैं । नरसिंह मेहता इसी को वैष्णव जन कहते हैं । शिवानंदजी का एक दिव्य सूत्र है, 'स्पेंड, स्पेंड, स्पेंड़... ही विल सेंड़, सेंड़, सेंड़...।'

दान-धर्म नहीं है, कर्तव्य है अथवा तो वहाँ अपना कर्तव्य ही धर्म है, ऐसा भी कह सकते हैं । 'परदुःखे उपकार करे तो ये मन अभिमान न आणे रे...' में बदले की भावना नहीं है । मुआवजा लेना नहीं । लालच

या लोभ का भी प्रश्न नहीं है । यहाँ हार्दिक विशालता ओर समग्र विश्व मेरा है, का प्रतिबिंब है । 'विश्वंदर्पण दृश्यमान नगरी' ऐसा आदि शंकराचार्यजी कहते है । यह विश्व एक दर्पण है । जो दिखाई देता है वह अपना ही प्रतिबिंब है, फिर यहाँ मेरा-तेरा, अपना-दूसरे का, ऐसा भेद नहीं रहता । 'द्वंद्वातीतं त्रिगुण रहितं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यं ।' अपनी अवस्था साधारण मानवी की न रहे, हम द्वंद्व से पृथक रहें ओर जहाँ रागद्वेष नहीं, काम-क्रोध नहीं, मैं ओर तू भी नहीं, वहाँ उपनिषद या वेद के महावाक्य अहं ब्रह्मास्मि... 'तत् त्वम् असि' की क्रमशः जीवन सार्थकता का अधिकार, ही जीवनको सार्थक करता है । 'वैष्णव जन' में परोपकार उसका प्रथम पर्याय है । संत तुलसी कहते हैं... 'परहित सरिस धरम नहीं भाई । पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ॥' और वेदव्यासजी के अनुसार- 'अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' इस वाक्य में वेदव्यासजी कहते हैं कि मेरे द्वारा कथित-लिखित अठारह पुराणों का रहस्य दो शब्दों में कहा जा सकता है - पहला परोपकार यह पुण्य और दूसरा परपीड़न - दूसरे को कष्ट देना-यह पाप है ।

सुभाषितम् कहते हैं... वृक्ष परोपकार के लिए खड़े हैं, परोपकार के लिये नदी बहती है । परोपकार के लिए सूर्य तपता है । परोपकार ही वैष्णव जन का प्रथम और आवश्यक गुण है । श्रीमद् भगवद् गीता के अठारहवें अध्याय के पाँचवें श्लोकमें श्रीकृष्ण मानवजीवन की सार्थकता ही यज्ञ, दान, तप और कर्म में है ऐसा कहते हैं । समग्र विश्व, यह अपना विशाल परिवार है । दान यानि विश्वप्रेम । मुसलमान मित्रों की भाँति ही हिन्दु परम्परा 'दैव का दसवाँ भाग' में मानते हैं । अपनी आमदनी का दसवाँ भाग दान करो । सेवार्थ के लिए परमार्थ करो । श्री स्वामी शिवानन्दजी महाराज कहते हैं - प्रार्थना तुम्हें ईश्वर के आधे मार्ग तक ले जायेगी । उपवास - परम धाम के द्वार तक ले जायेगा, परन्तु दान से तो तुम्हें ईश्वर के भवन में प्रवेश मिलेगा ।

दान का अर्थ रूपया पैसा ही नहीं । जैन मतावलंबी कहते है कि यदि कोई सत्कर्म किया हो तो उसके लिए भी दी गई शुभेच्छाएं या अनुमोदन

भी दान है । पक्षियों को दाना डालना, पानी पिलाना या पशुओं के लिए पानी का हौज़ बनवाना, राहगीरों को विश्रांति मिले इसके लिए छायादार वृक्षों का लगाना, वृक्षों के चारों ओर बैठने के लिए विश्राम स्थान बनवाना, आदि यह भी एक प्रकार का दान ही है । हमारे प्रेमी एक संत पूज्य स्वामी गुरुकृपानंदजी महाराजकी २५० बीघा जमीन थी । उन्होंने उस जमीन को अपने बेटों को समान भाग में बाँट दी । उसमें से पाँच-सात बीघा अपने लिए रख ली । हर वर्ष दो बार उसमें गायों का चारा उगाते हैं । पूरा खेत फसल से लहलहाता हो तब अड़ोस-पड़ौस के गाँवों की गायों को भी निमंत्रण दिया जाता है । सेंकडो गायें आठ-दस दिन तक सुबह से शाम तक हरा-हरा चारा खाकर संतुष्ट होती है । चींटियों के लिए उसका खाद्य डालना, कुत्तों के पिल्लों को दूध पिलाना - यह भी दान है । राजकोट में किताब घर नामक संस्था के जयन्तीलाल शाह जैन-वणिक श्रावक हैं । 'जलसा' के दुलारे नाम से वे जाने जाते हैं । नगरपालिका द्वारा भटकते हुए कुत्तों को पकड़ा जाता और जब ट्रक भर जाती तब उन्हें दूर छोड़ा जाता । लेकिन जब तक ट्रक न भर जाये तब तक ये 'जलसा' उन्हें रोटियाँ खिलाते । यह आवश्यक नहीं है कि हर वर्ष एक समान वर्षा हो । जब बरसात कम होती तब राजकोट के आजी डेम की मछलियों को आटे की गोलियाँ खिलाते । ठण्डी में जामनगर के लाखोटा तालाब में हजारो पक्षी परदेश से आते हैं । जामनगर के सेवाभावी ओर पक्षीप्रेमी नागरिक इन पक्षियों ओर फ्लेमिंगो को हर रोज १०० से १५० टन गाँठिया नमकीन खिलाते हैं । अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध रामदेव मसाला के मालिक अपने बंगले के विशाल बगीचे में प्रतिदिन ५० किलो दाना पक्षियों को डालते हैं । यह कहना उचित होगा कि यहाँ डाले हुए दाने की अपेक्षा अधिक पक्षी चुगने के लिए आते हैं । उनके दाने में मूंगफली, मकई, जुवार, बाज़रा, मूंग, मौठ ओर राई भी होती है । अलग-अलग पक्षी ओर गिलहरियों को अलग-अलग दाना पसन्द होता है । हमने आश्रम में आने-जाने वाले सभी विशिष्ट अतिथियों को मौलसिरी का पौधा देने की प्रथा रखी है । आश्रम में और संसारभर में कई स्थानों पर मौलसिरी,

पीपल, बड़, अंजीर, आम, आँवला, सेव, खुमानी, चेरी, नीम, गुलमोहर के एक करोड़ से अधिक वृक्ष लगाऐ हैं, सिंचन किया। एक वृक्ष अगणित पक्षियों का निवासस्थान, अन्नक्षेत्र एवं धर्मशाला के समान होता है। हमारा उद्देश्य परोपकार का न होकर स्वधर्मपालन का है । जहाँ जाते हैं वहाँ रक्तदान शिबिरों का आयोजन करते हैं। मैं स्वयं ११७ बार रक्तदान करके धन्य एवं कृतार्थ हुआ हूँ। संन्यस्त जीवन में जो कुछ भोजन मिलता है उसे समाज देता है। उस समाज के अन्न में से उत्पन्न रक्त समाज को वापस देने में हमारा क्या खास प्रदेय है ?

हम उत्तर काशी के भूकंप के समय गढवाल के पहाड़ी प्रदेशों में सेवार्थ गये थे। वहाँ हमारे वरिष्ठ स्वामीजीने 'बीडियाँ' भेजी थी। गढवाली परिवार भोजन के बिना रह सकते हैं मगर बीड़ी के बिना नहीं। ये संत जब इस कार्य के लिए विचरण करते हैं तब उनका कोई निजी स्वार्थ नहीं होता । एक मात्र लोकसंग्रह मानवजीवन अहिंसा, सत्य और धर्म के मार्ग पर चले, इसके लिए प्रचार-प्रसार करना ही उनका उद्देश्य होता है। संत विनम्र होकर स्वयं को ईश्वर का सेवक कहलाकर कर्मशील बने रहते हैं । उसी में उनका वैष्णवतत्त्व प्रकट होता है ।

हम भूखों को भोजन दें यह आवश्यक है, निर्वस्त्रों को शरीर ढकने के लिए वस्त्र दें, यह भी जरूरी हैं । और बीमार की सेवा करें यह भी उत्तम है । परन्तु विद्यादान ओर ज्ञानदान तो सर्वोत्तम दान है। दान देते समय यह विचार नहीं करना चाहिए - 'इसको दान दें ? किस लिए ? जिसने दान लेने के लिए हाथ लम्बा किया है उसे दान देना ही चाहिए; परन्तु दान देकर उसके आंकडे और हिसाब करके उसकी तख्तियाँ लगवाना तो हमारी कथाकथित उदारता का प्रदर्शन ही है। दाँये हाथ से किये हुए दान का बाँये हाथ को पता न लगे वही श्रेष्ठ दान है। मन में ऐसी भावना भी नहीं आनी चाहिए कि हमने दान किया है इसलिए हमारा सम्मान होना चाहिए । दान देने के बाद मन में इस प्रकार के विचार भी नहीं उठने चाहिए कि दान देने से हमें मोक्ष मिलेगा, हमें स्वर्ग मिलेगा, हमारे कर्म का शुद्धिकरण होगा ।'

वेदों की एक कथा है - देव, दानव और मनुष्य प्रजापति से मिलने गये। उन्होंने प्रजापति से सुख-शान्ति और समृद्धि का मार्ग पूछा। प्रजापति बोले - 'द-द-द' देवताओंने 'द' का अर्थ लिया. हम सुख-सुविधाओं से पूर्ण होते हैं इसलिए आत्मसंयम की आवश्यकता है - आत्मसंयम के लिए इन्द्रिय दमन एवं इन्द्रिय निग्रह। दानवों ने अनुभव किया - हम क्रूर हैं इसलिए हमें 'द' अर्थात् हृदय में दया रखनी चाहिए। मनुष्यों को लगा - हम स्वार्थी तथा लोभी हैं इसलिए उन्होंने 'द' का अर्थ दान किया । ऐसे तो ये तीनों अर्थ सच हैं और प्रत्येक के लिए पर्याप्त भी ।

श्रीमद् भागवत में दानी रन्तिदेव का दिव्य उदाहरण है, कर्ण भी दानी कहा जाता है । युधिष्ठिर तो महाराजा थे । पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता थे । परन्तु उनका भारत में कहीं भी मन्दिर या स्मारक नहीं है । उन्होंने अपनी पत्नी जुए में दाव पर लगाई थी और दुर्भाग्य से हार गये थे। जब कि संतों की भूमि सौराष्ट्र के वीरपुर में संत जलाराम बापा ने अपनी पत्नी साधु सेवा के लिए, साधु के माँगने पर, अपनी पत्नी की अनुमति से दान में दे दी थी, यह कोई सामान्य बात नहीं थी । इसलिए जलाराम बापा के मन्दिर लंडन, अमेरिका और अफ्रिका जैसे देशों में भी हैं। यह सारा प्रताप 'पीड पराई जाणे रे...' का ही है। सेवा परोपकार और उदारता का ही प्रताप है ।

समयदान भी दिया जा सकता है । उपस्थिति का दान दिया जा सकता है । धन का दान, सम्मान का दान, प्रेम का दान, सद्भावना का दान भी दे सकते हैं। प्रत्येक दान सेवा ही है और प्रत्येक सेवा भी दान ही है ।

मानवी मात्र की सेवा-निष्काम सेवा, ये वास्तविक अर्थ में 'पीड पराई जाणे रे...' का मूर्त रूप है। जीवन का हर क्षण स्वार्थ त्याग के लिए उपयोग किया जाय; वहीं 'पीड पराई जाणे रे...' का सही वैष्णवतत्त्व है।

मानव सेवा ही माधव सेवा है ।

भावनगर में शिशुविहार नामक संस्था है। जिसके संस्थापक पूज्य मानभाई भट्ट थे । वे कहते-जब तक सांस चले तब तक इस शरीर से

गधे की तरह काम लो । उन्हें केन्सर हुआ । तबीयत इतनी खराब थी कि आखिरी स्टेज पर है ऐसा समाचार प्राप्त हुआ तो हम उनसे मिलने गये । उनका बिस्तर खाली था । उनकी पत्नी श्रीमती हीराबहन से पूछा-'भाई कहाँ हैं ?' जवाब मिला-ओंफिस में । वहां जाकर हम उनसे मिले, तो मानभाई कहते हैं - 'प्रोस्टेट का केन्सर है । हाथ-पैर और मन स्वस्थ हैं, इसलिए तीनों से खूब काम लेना चाहिए । यह सच्चे वैष्णव जन के दर्शन हैं ।'

हमारे बापूजी पूज्य डॉ. शिवान्द अध्वर्युजी (स्वामी याज्ञवल्क्यानंदजी महाराज) ९४ वर्ष तक जीवित रहे । आँखों के डॉक्टर थे । उन्होंने अपने जीवनकाल में साढ़े चार लाख ओपरेशन नि:शुल्क किये होंगे । गुजरात में, बिहार में चम्पारण्य तक और गढवाल में गंगोत्री या केदारनाथ तक तथा आर्मी की व्यवस्था में लेह, लद्दाख, कारगिल, पुंछ तक; वे अपने मोबाईल ओपरेशन वाहन के साथ घूमते थे । परन्तु अन्तिम चार वर्ष में उनकी दृष्टि की नस सूख गई थी । अब उनका ओपरेशन करना बंद हो गया था । वे देख नहीं सकते थे । परन्तु अपने सहायक से सब पत्र पढ़वाते और पत्रों के जवाब लिखवाते । वार्ड में चक्कर मारते, सत्संग करते और कराते । आकाशवाणी पर वार्तालाप देते । शिवानंद आश्रम हृषीकेश में अन्तिम समय तक गये । पैदल अस्पताल में गये और वहाँ पहुंचकर पाँच मिनिट में ही उनका हार्टफेल हो गया । जीवन की अन्तिम सांस तक उन्होने सेवा की । 'वैष्णव जन' कोई परिक्रमा या भाईदूज का स्नान या मनोरथ में गुलाब के फूल का म्कुला ड़ालना मात्र ही नहीं है । वास्तविक वैष्णव जन तो 'पीड़ पराई जाणे रे... पर दु:खे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे... में ही सार्थक होता है ।'

अभिमान त्यागो - सेवा करो

सेवा से ही हृदयशुद्धि होती है । स्वार्थ वृत्तियों का नाश होता है । हृदय विशाल बनता है । आत्मसाक्षात्कार होता है ।

'मुझे जब सेवा करने का मौका मिले तो मैं उस मौके को छोडता नहीं ।' ऐसा कहना अयोग्य नहीं है ओर योग्य भी नहीं है । सेवा का मौका छोड़ना नहीं चाहिए । 'सेवा के लिए मुझे निमन्त्रण नहीं' ऐसा कहना तो अहंकार है । सेवा के नाम से कपट है, छल है ।

हम छोटे थे । कक्षा ९-१० में पढते थे । तब म्युनिसिपेलिटी के कर्मचारियों ने हडताल की । होमगार्ड के लोग कूढ़े ओर मैले की ट्रक लेकर आते । हमने एक सप्ताह तक सारे मुहल्ले की सफाई की थी । उस समय फ्लश सिस्टम नहीं था । गटरें भी खुली थीं । संडास-डिब्बा संडास थीं । इसलिए डिब्बा कंधे पर उठाकर 'संडास सफाई सेवा का अभियान' हमने किया । आज ५० वर्षो के बाद भी सेवा के आनन्द को याद करके आनंद की अनुभूति होती है ।

गुरुद्वारे के बाहर सिख परिवार के बहन-भाई जूतों की देखभाल की सेवा करते हैं । अगर जूते फटे हों तो उन्हें सीने की सेवा भी करते हैं; पॉलिस कर देते हैं । सुबह तीन-चार बजे आते-जाते भक्तों को चाय, दूध, पराठे, ब्रेड का नास्ता कराते हैं । श्री हरमन्दिर साहेब की पूरी परिक्रमा दूध से धोते हैं । महिलाएँ अपनी अच्छी-अच्छी साड़ियों से पौंछा लगाती हैं । यदि हृदय में निराशा या उदासीनता हो तो ऐसे भक्ति-भाव से सेवा करने से सेवा की महक नहीं आती ।

सेवा में उत्साह होना चाहिए । बेमन से की गई सेवा भाररूप लगती है । ऐसी सेवा लेने वाले को सेवा प्राप्ति का सुख नहीं मिलता । घृणा मिलती है । वैमनस्य उत्पन्न होता है । सेवा लेने वाले के लिए, वह सेवा बोझ नहीं बननी चाहिए । जिसकी सेवा करते हैं उससे हम किसी भी प्रकार की बदले की आशा न करें । जब कि ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है ऐसी भावना से ही सेवा सार्थक होती है । अत: सेवा में आलस्य किये बिना आत्मभावपूर्वक नि:स्वार्थ भाव हो तो अनासक्ति पैदा होती है; तभी सच्चे अर्थो में वैष्णव जन के दर्शन प्रस्तुत होते हैं ।

सेवा ही प्रार्थना है । भगवान भाष्यकार आदि शंकराचार्यजी अपने उपदेश पंचक में कहते हैं- 'वेदों का अध्ययन करो. वेदों के आदेशानुसार हमें जिस काम का उत्तरदायित्व सौंपा गया हो उसे अच्छी तरह करें । ऐसा करने से ही तुम्हारी भगवान की सेवा पूरी होती है । इस भाव से सेवा करो । परन्तु इस सेवा के बदले फल की आशा मत रखो । मन अभिमान न आणे रे ।'

इस अभिमानरूपी पत्थर को छाती से बाँधकर सेवा का प्रयत्न करने वाले, सेवारूपी पानी में तैर नहीं सकते, डूब जायेंगे । इसीलिए गुरुदेव श्री स्वामी शिवानंदजी महाराज कहते हैं- 'अभिमान त्यागो नारायण-नारायण । संन्यासी अभिमान त्यागे । हम पुरुष, तुम स्त्री, हम ब्राह्मण तुम शूद्र, हम शिक्षित तुम अशिक्षित, हम उच्च तुम नीच, हम डॉक्टर, कलेक्टर, पुलिस अधिकारी, वकील या पटवारी का जो मिथ्याभिमान है, उसका हमें त्याग करना ही पड़ेगा ।'

कर्णाटक के संत सर्वज्ञ कहते है- 'देह का दमन करना पड़ेगा, अंत:करण का नियंत्रण करना पड़ेगा । क्या प्रभु के द्वार में प्रवेश करने का कार्य किसी अबला का हाथ पकड़ने जितना सरल है ?'

ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है । यह भाव जब तक हृदय में न जागे तब तक बेकार ही है, रेलवेस्टेशन पर कुली कितनी मजदूरी करते हैं ? धोबी कितनी बडी गठ़री उठाते हैं ? नदी किनारे धोते हैं ? अनाज बाजार के मजदूरों की मज़दूरी तो सबसे कठिन है । हमारे हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या आदि में तीन पहिए वाली साइकिल रिक्शा में पेसेन्जरों को बिठाकर हांकना आसान नहीं है । मैंने कटक में खाली रिक्शा चलाकर देखी है । दस फूट चलाकर ही थक गया था । अच्छे-अच्छे लोग तो एक पैडल भी नहीं मार सकते । परन्तु हम इन सबको कम से कम १० रु मांगे तो बडी मुश्किल से ५ रु देंगे । यदि इतने में न माने तो ७ रु में तय करके बैठेंगे । लेकिन सत्यनारायण की कथा वाले पंडितजी को १५१ रूपये, धोती, कुर्ता, अंगोछा और उपर से थाली भरकर आटा, चावल, दाल, शाक, कटोरी भरके घी सीधा-सामग्री के रूप में आसानी से दे देते हैं ओर कहीं महा संतों का आगमन हो तो लोग दस हजार से एक लाख रूपये दक्षिणा के रूप में दे देते हैं । भला पूछो-इन महात्माओंने क्या मजदूरी की ? मजदूर की मजदूरी स्वार्थपूर्ण है । मेहनत अपने ओर अपने परिवार का पेट भरने के लिए है । संतों को मिले हजार या लाख रुपये उनके लिए धूल के बराबर है । कामिनी ओर कंचन इन दोनों से संत विरक्त हैं । संत लोग : एक दिन हाथी, एक दिन घोड़ा, एक दिन हाठम-हाठी (भागदौड) एक दिन

लड्डू, एक दिन बाटी, एक दिन फाकमफाकी, एक दिन कम्बल, एक दिन अम्बर, कभी दिगंबर । मन मस्त रहना, हर हाल में अलमस्त सच्चिदानंद हैं; क्योंकि उनका मन, जीवन उपभोग के लिए नहीं, बल्कि उनका जीवन उपयोग के लिए है । भोग में दु:ख है, अशान्ति है, कामना है, वासना है, क्लेश ओर कलह है । योग में सुख-सुलह, शान्ति ओर परमानंद है । नरसिंह का वैष्णव भोग का जोगी नहीं, भोग का त्यागी है । वैष्णव बद्ध नहीं, वैष्णव तो मुक्त है । वह कर्म या भक्ति अथवा ज्ञान की त्रिवेणी में विभाजित नहीं; वह भक्ति ज्ञान का संगम है । उसका योग समन्वय योग है ।

सरलता

इसीलिए वैष्णव का जीवन सरल है, सहज है, विवेकपूर्ण है, विचारशील है, सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूतिजन्य जीवन है । 'सकल लोकमां सहुने वंदे' ये वैष्णव का विशिष्ट पर्याय है । शिव ब्रह्मेन्द्र की अनुभूति जन्य एक रचना है... 'सर्व ब्रह्ममयं रे रे... सर्व ब्रह्ममयं, किं रचनीयं किं वचनीयं सर्वम् ब्रह्ममयं...' स्वामी शिवानन्दजी महाराज इस पद का विस्तार करके गाते । लड़का ब्रह्म, लड़की ब्रह्म, गधा गधी भी ब्रह्म, हार्मोनियम वाला भी ब्रह्म है, तबलेवाला भी ब्रह्म... ये शब्द उनके लिए केवल तमाशे के लिए नहीं थे अपितु अनुभूतिजन्य सत्य था । एक व्यक्ति आश्रम का हारमोनियम चुरा ले गया तब स्वामीजीने उसे तबला भी भिजवा दिया । अकेले हारमोनियम से काम कैसे चलेगा? ताल तो चाहिए न । हमारे लिए यह प्रश्न खडा हो सकता है कि स्वामीजी तो संन्यासी हैं हम तो गृहस्थी हैं । हमसे यह सब कैसे होगा? जी हाँ, होगा ।

'विनोद नी नज़रे' एक पुस्तक में लेखक लिखते हैं : 'उस समय की आकाशवाणी बम्बई के केन्द्र निदेशक श्रीमती वसुबेन भट्ट के घर सेंध लगाकर चोरी हुई । चोर भी मालसामान के साथ पकड़ा गया । पुलिस स्टेशन से फोन आने पर वसुबहन पुलिस स्टेशन गई । उन्होंने **F.I.R.** में हस्ताक्षर ही नहीं किये ओर कहा- 'तुम लोगों ने ऐसा घोटाला किया है । यह तो मेरा निजी व्यक्ति है ।' चोर को मालसामान के साथ घर ले आई

ओर भोजन कराया, साथ में बैठकर भोजन किया । जो माल वह ले गया था वह और थोड़ा अधिक प्रेम से देकर उसे घर भेज दिया, वसुबहन श्री माँ आनन्दमयी की भक्त है । किशन चावडा श्री दिलिपकुमार रोय की मित्र हैं । संतों और सत्संगियों के साथ रहकर उनका मन निर्मल हुआ है । अतः सुख-दुःख समान समझिए... घटना के साथ गठन; के साधनों के अभ्यासी बनें । उनमें रहे वैष्णव को ढूँढना पड़े, ऐसा नहीं । उनका वैष्णव जाग्रत में जाग्रत, स्वप्न में जाग्रत ओर सुषुप्ति में जाग्रत है । वैष्णव जन कोई त्रेता या सतयुग का स्वप्न नहीं । वैष्णव जन अर्थात् Life with absolute awareness है ।

वैष्णव जन की सेवा निष्काम सेवा है । अधिकांश लोग जिनमें संन्यासी, कथाकार भी आ जाते हैं । उनकी so called-तथाकथित निष्काम सेवा सार्वजनिक जीवन में अभिव्यक्ति के लिए ही होती है । एक राज्य के मुख्यमंत्री से किसी साप्ताहिक के सम्पादक ने एक लेख लिखने को कहा । लेख छपा, लेकिन साप्ताहिक के मुखपृष्ठ पर मुख्यमंत्री का छायाचित्र नहीं छपा । मुख्यमंत्रीजी बेचैन हुए । एक प्रेस कोन्फरन्स में उस सम्पादक से जवाब-तलव किया । कितना निम्नकोटि का व्यक्तित्व ? ऐसे व्यक्ति उच्च पदों पर बैठकर भी क्या कर सकेंगे ?

कुछ साधुओं की भी ऐसे लोगों में गिनती होती है । झोंपडी में रहने ओर गरीब के घर की रोटी खाने की कथाकार बातें तो करते हैं परन्तु उनकी अपनी झोंपड़ियाँ वातानुकूलित ही होती हैं । रोटी का एक टुकडा कोने से तोड़कर, दिखावे के लिए खाकर शेष प्रसाद के रूप में बाँट देते हैं । और स्वयं पकौड़ों का रसास्वाद करते हैं । पकौड़े खाने में भी कोई दोष नहीं हैं परन्तु ऐसा दम्भ करने की क्या आवश्यकता है ? जब में वह बात कह रहा हूँ तो आपके मन में एक प्रश्न उठ सकता है... महाराज वैष्णव का स्वरूप है- 'निंदा न करे केनी रे' । मैं ऐसा वैष्णव नहीं हूँ । न ऐसा बनने का मेरा कोई प्रयत्न या आडम्बर है । मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, सत्य को सत्य के रूप में देखता हूँ ओर असत्य को असत्य के रूप में देखता हूँ । मुझे इस चर्चा में 'विवेक तत्त्व में समदृष्टि दृष्टिगत नहीं होती समग्र संसार में सबकी वन्दना कौन कर सकता है ? जो व्यक्ति आडम्बर रहित

है, दम्भ और छल बिना की डिप्लोमेसी का जीवन जी सकता है वही समूचे संसार में सबकी वंदना कर सकता है । जो सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करे, जो सर्वत्र एकमात्र ईश्वर का ही दर्शन करे, वही सर्वत्र वंदना कर सकता है । वंदन भी एक प्रकार का योग है ।' श्री चैतन्य महाप्रभु की अष्टपदी में कहा है : 'तृष्णादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुता, अमानिनां मानदेन कीर्तनीय सदा हरिः ।' तिनके जैसे सरल बनो; वृक्ष जैसे सहनशील हो, जो सन्मान के योग्य नहीं उसे भी सन्मान दो और हमेशा हरि का स्मरण करो ।' हमारे गुरुदेव प्रत्यक्ष परमात्मा स्वरूप श्री स्वामी चिदानंदजी महाराज तो हमेशा ऐसा कहते हैं कि, 'संतों तथा गुरुदेव के आंगन में पायदान बन कर रहो ।' कि जिससे संत या सदगुरु आते-जाते पैर पौंछकर जाँय; तो अपना कल्याण हो । सरल नहीं, परन्तु दुष्कर भी नहीं । प्रयत्न से सब कुछ सम्भव हो सकता है । कारण कि मीरां, तुलसी, सूर, नानक कर सकते हैं तो मैं और आप इसके लिए प्रयत्न क्यों नहीं कर सकते ? मीरां अपने को चाकर कहती हैं, कबीर अपने को ईश्वर का - राम का गुलाम कहते है, एक स्थान पर उन्होंने अपने आप को 'कबीर कुत्ता राम का' ऐसा भी कहा है । इसका अर्थ 'मैं अपने मालिक का वफादार प्राणी हूँ,' तुलसी अपने आपको पापी कहते हैं । नानक कहते हैं : 'मैं तो तेरे पैर की राख हूँ ।' 'नानक बगोयद तेरे चाकरां दी पा खाक ।' रामदास, कबीरदास, तुलसीदास, नानकदास, पुरन्दरदास, कनकदास आदि प्रत्येक दिव्य चरित्र के संत अपने आपको दास कहलाते हैं और अपनी योग्यता तो कुछ भी नहीं । फिर भी अपने आपको कहलवाते हैं महाराजश्री !!!' वन्दन करना बहुत ही कठिन है । दर्शन के लिए भी अपनी पात्रता कितनी? इसीलिए गुरुवाणी कहती है, 'नीवाँ हो के चल ते निवियाँनुं रब मिलदा'- विनम्र होकर रह, तुझे प्रभु अवश्य मिलेंगे । नानक के पदों का चिंतन, मनन और निदिध्यासन, विनम्रता के मार्ग पर चलकर ईश्वर के दिव्य और भव्य प्रकाश पथ की ओर संकेत करता है ।

साधो मनका मान त्यागो ।
काम, क्रोध, संगत, दुर्जन की ताते अहर्निस भागो ॥

सुख-दुःख दोनों सम करी जाने, और मान अपमाना ।
हर्ष शोक से रहे अतीता, तीन जग तत्त्वपिछाना ॥ १ ॥
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागे खोजे पद निरवाना ।
जन नानक यह खेल कठिन है, कोऊ गुरु-मुख जाना ॥ २ ॥

सूरदास की व्यथा अपनी नहीं है । उनका जीवन ईश्वर की सर्वत्र व्यापकता में स्पंदन करता है । उन्हें संसार में कोई दोष ही नहीं दिखाई देता । उनका जीवन अपने निजी जीवन की व्यथा-कथा को स्पंदित करता हुआ कहता है... 'रे मन ! मूरख जनम गवायो ! करी अभिमान विषय-रस चाख्यो स्याम सरन नहीं आयो ।'

भगवद् गीता के प्राण समान स्थितप्रज्ञ प्रकरण में भगवान श्रीकृष्ण भी 'निर्ममोनिरहंकारः... स शान्तिम् अधिगच्छति' के माध्यम से अहंकार शून्य बनने के लिए सावधान करते हैं ।

तुलसी तो एक ही चौपाई में वैष्णव जन का सार कहते हैं :
काम, क्रोध, मद, मान न मोहा, लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ।
जिन्हके दम्भ कपट नहीं माया । तिन्हके हृदय बसहु रघुराया ॥
(रामचरित मानस)

जहाँ काम, क्रोध, मद, अभिमान, लोभ, क्षोभ, राग या द्वेष नहीं, जिसमें कपट नहीं, जिसमें दंभ नहीं, वहां ही; उनके हृदय में ही, श्री राम बसते हैं ।

तुलसी की सरलता तो अकल्पनीय है । वे कहते हैं : 'प्रभु तू दयालु है; मैं दीन हूँ, तू दानी है मैं भिखारी हूँ, मैं तो विश्वविख्यात पापी हूँ ओर तू पापों से उद्धार करनेवाला है । तू अनाथ का नाथ है ओर मेरे सिवाय मुझ जैसा अनाथ कौन है ? मेरे सिवाय कोई दूसरा भिखारी नहीं ओर तेरे जैसा दानी नहीं । मेरे व्यथित जीवन में तू ही काम आता है । तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ, तू ठाकुर है, मैं दास हूँ । हे नाथ ! तात, मात गुरु, सखा तुम सबके लिए भले ही हो, परन्तु मेरे लिए तो एक तू नाथ ही है । तेरे ओर मेरे अनेक सम्बन्ध हैं । तुम्हें जो अच्छा लगे उसी भाव से मुझे बुलाना । परन्तु अन्त में तो मैं तेरी शरण में ही हूँ । तुम्हारे बिना मेरा और कोई नहीं है, ये मत भूलना । तुलसी दीनता, विनम्रता की मूर्ति के समान हैं।'

यों तो तुलसी शब्द भी जानने के लायक है ओर आनन्द के लिए भी । 'तु' अर्थात् एक भगवान श्रीराम ओर 'ल' अर्थात् लखन ओर 'सी' तो सीता माता ही है न ? तुलसी का अपना व्यक्तिगत कोई परिचय-पत्र नहीं है । इसे अंग्रेजी में 'आईडेन्टिटी' कहते हैं । इसे हम शब्द प्रयोग में Punning of the word 'डेन्टींग ओफ दी आई' आई अर्थात् मैं डेन्टींग अर्थात् पिचकाना । जब तक यह अहं समाप्त नहीं होगा, जब तक हृदय में, व्यवहार वाणी में और आचरण में विनम्रता, सरलता ओर निष्कपटता नहीं आती तब तक वैष्णवत्व की प्राप्ति कठिन है ।

अपने मुँह में जन्म से ही जीभ है । दांतों का विकास बाद में धीरे-धीरे होता है लेकिन दांत पहले समाप्त होते हैं । जीभ जीवन के अन्त तक साथ नहीं छोड़ती । दांत मजबूत होते हैं, वे काटने का काम करते हैं । किसी दिन दर्जी की दुकान पर जाकर कैंची मांगिये । कैंची उसके पैर के पास ही पड़ी रहती है वहां से वह दे देगा । फिर सुई मांगिये । सुई सिर की पगडी या टोपी में से निकालकर देगा । सुई का स्थान सिर के उपर है, ओर कैंची का पैर के पास । कैंची काटने का काम करती है ओर सुई जोड़ने का काम करती है ।

सौने वंदे

हमारे पैदा होने से पूर्व भी समाज था । हमारे जीते जी भी समाज रहता है । हमारे देहावसान के बाद भी समाज रहेगा । समाज के बिना अपना व्यक्तिगत जीवन सम्भव नहीं । फिर हम अभिमान क्यों करें ? नरसिंह मेहता वैष्णव जन की योग्यता प्राप्त करने के लिए वन्दन करने को कहते है । हम गुजराती में कहते हैं - 'पगे लाग ।' इसका क्या अर्थ है ? अर्थात् पैर के पास सिर झुकाओ । पंजाबी में कहते हैं 'मत्था टेक ।' अर्थात् माथा झुकाओ, सिर जमीन पर रखो । सिर अथवा माथा ही अहंकार है । अहंकार होगा तो वन्दन सम्भव नहीं है । जोर से आँधी आये तो नारियल युकेलिप्टस, नीलगिरी के पेड जड़ से उखड़ जाते हैं । अशोका पेन्डुलम के पेड़ भी उतने ही लम्बे होते हैं परन्तु वे उखड़ते नहीं । क्योंकि घड़ी के पेन्डुलम-लोलक की तरह- वे हवा के साथ दाँयें-बाँये झूलते हैं । जो

झूक सकते हैं उन्हें झुकाने की नौबत नहीं आती । इसी लिए कहा गया है, 'सबकी वंदना कीजिए ।'

जब पहाड़ पर वर्षा होती है तो कहीं-कहीं पानी रूक जाता है । जहाँ पानी रुक जाता है वहां दुर्गंध पैदा होती है । जो पानी ऊपर से नीचे गिरे उसे झरना कहते है, प्रपात कहते है । उसके नीचे स्नान करते है । उसका पानी मीठा, मधुर होता है, उसका सौंन्दर्य भी होता है । जो पानी अहंकार करता है, कहता है 'नीचे नहीं आऊंगा ।' उसका सब व्यर्थ हो जाता है । उसमें कीड़े पड़ जाते हैं । अपने शरीर में से नियमित रूप से सुबह-शाम रात-दिन मूत्र निकल जाये तो निश्चिंतता महसूस होती है । यदि मूत्र का निकास न हो तो ब्लेडर में भर जायेगा । वहां जमा होगा तो बेक्टेरिया का खतरा रहता है । फिर भी मूत्र का निकाल न हो तो मूत्र किडनी में भर जाता है, वहां भी बेक्टेरिया पैदा करता है । फिर ये बेक्टेरिया रक्त में In blood stream- रक्त प्रवाह में जाकर मौत का सामान तैयार कर देते हैं । सौ बात की एक बात । ये सब उदाहरण तर्क इसलिए दिये गये हैं कि मूल मुद्दा स्पष्ट हो जाये । भाई ! जो झुकता है वह सबको अच्छा लगता है । वंदन एक दैवी गुण है, विनम्रता एक दैवी गुण है । झुकने से कुछ कम नहीं हो जाता, उसमें सौजन्य है ।

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या... जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः ।' ब्रह्म सत्य है जगत मिथ्या है । मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार नहीं हूँ । मैं पांच प्राण, पांच तन्मात्रा, पांच महाभूत, पांच कर्मेन्द्रिय अथवा पांच ज्ञानेन्द्रिय भी नहीं हूँ । मैं तो सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ । ये वेदान्त ज्ञान की पराकाष्ठा है । परन्तु यह ही आचार्य शंकर उपर्युक्त ज्ञान अमृत प्राप्त करने के बाद की रचनाओं में अपने जीवन की सरलता का परिचय देते हुए कहते हैं :

अरण्ये शरण्ये त्वमेकं भवानि-गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि... जीवन की किसी भी स्थिति में हे माँ ! हे भगवती मैं तेरी शरण में हूँ ।

उनका जीवन दंभी नहीं है । छल का तो प्रश्न ही नहीं । इसीलिए वे कबूल करते हैं । माँ ! मैं तेरा ही हूँ । यह वंदन का श्रेष्ठ प्रकार है । में तेरा ही हूँ, तू मेरा ही है । हे ईश्वर ! सब कुछ तुम्हारी ही इच्छानुसार हो । I am thine; thou art mine; thy will be done.

यहीं शान्ति है । दिव्यता ओर जीवन की भव्यता है । वैष्णव जन की यथार्थ उपलब्धि है । वन्दन यह कोई दीनता नहीं है । सौजन्य है । वंदन में दीनता नहीं । गौरव है । वंदन यह अज्ञान या दीनता का प्रदर्शन नहीं है । वंदन यह सज्जनता का दर्शन है । सकल लोक मां सहुने वंदे... ये तभी संभव होगा जब भक्ति ओर ज्ञान की पराकाष्ठा सम्भव हो । सर्वत्र प्रभुदर्शन हो । 'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है' के रंग में जीवन रंग जाय, यह एक परमोच्च अनुभूति है ।

एक बार विदेश में इस विषय पर प्रवचन हुए । प्रवचन के बाद में, हमने ऐसा कहा कि 'दक्षिणा तुम देने वाले ही हो तो मेरी इच्छानुसार देना । आज से जिसके साथ न बोलते हो, उनके साथ बोलना । जिसके घर न जाते हो तो वहाँ जाना । तुमने भूल की हो तो कबूल करना । भूल न की हो ओर तुम्हें गुनेहगार माना हो, अपने से कोई भी, कभी भी किसी भी विषय पर दुःख हुआ हो तो उसकी भी क्षमा माँगना... वगैरह ।'

छ महिने के बाद विदेश से एक बहन का फोन आया । उन्होंने कहा- ''मैंने आपका प्रवचन सुना । उस दिन मुझे रात को देर तक नींद नहीं आई । आधी रात को उठकर मैंने अपने तमाम रिस्तेदारों, इष्टमित्रों से क्षमा माँगने के लिए पत्र लिखे, ई-मेल किये, दो दिन के बाद सबसे दिल खोलकर फोन पर बातें की । इसके बाद साप्ताहिक छुट्टियों में अपने घर सत्यनारायण की कथा का आयोजन किया । यह अपने घर लोगो को बुलाने का एक बहाना था । पूजा के बाद भोजन कराया । इसके बाद अन्त में जमीन पर बैठकर, घुटने टेककर सबको प्रणाम किया । मैं कुछ बोल न सकी; गला रुँध गया था । सभी, आंखों में हर्ष के आंसू लेकर अपने-अपने घर गये । मैं बहुत अभिमानी थी । मेरा स्वभाव लोगों का अपमान करना था । मैं समाज से अलग पड़ गई थी क्योंकि मैंने छोटे-बडे सभी का तिरस्कार किया था । हम हर सप्ताह ड्राइवर ओर माली बदलते थे । मेरे प्रिन्टिग प्रेस में कोई आदमी टिकता ही नहीं था । मेरे पति ओर बच्चे सब मुझसे दुखी थे । पर अब मैं हल्की फूल जैसी हो गई हूँ । स्वामीजी आप कहां हो ? मैं भारत आकर आपका आभार व्यक्त करना चाहती हूँ । आपने मुझे ही नहीं, मेरे समग्र परिवार को नवजीवन दिया है ।'' विनम्रता

समग्र परिवार को प्रेम के धागे से बांधने वाला सद्‌गुरु है । वंदन में हानि नहीं, नफा ही नफा है ।

'सकल लोकमां सहुने वंदे निंदा न करे केनी रे ।' लोग निंदा क्यों करते हैं ? विश्वस्तर के मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मन्तव्य है कि जब मनुष्य खुद कुछ करने का प्रयत्न करता है ओर कर नहीं सकता तब निराश होकर जगत के दोष ओर लोगों की भूलें देखने लगता है ओर तिल का ताड़ बना देता है । श्री श्री मा शारदादेवीने कहा है, 'जो जगत में सुखी होना चाहते हो तो अपने दोष देखो । जगत के दोष कभी मत देखना ।' श्री श्री मा आनन्दमयी माताने भी सुन्दर बात कही है, 'जो किसी के दोष देखोगे तो उसके दोष तुममें आ जायेंगे ओर यदि किसी के सद्‌गुणों का चिंतन करोगे तो उसके सद्‌गुण तुममें आयेंगे । इसलिए किसी के दोष मत देखना ।'

मनुष्य का जीवन तीन प्रकार की प्रकृति में जकड़ा हुआ है । प्रथम सुपीरियारीटी कोम्पलेक्स, द्वितीय इन्फीरियारीटी कोम्पलेक्स और तृतीय डाँवाडोल (अस्थिर) । ऐसा मनुष्य विश्वासपात्र नहीं होता बडप्पन की भावना, हीनता की भावना और बीच में झूले की तरह । जब हीनता की भावना ज्यादा हो तब अपनी असफलता का दोष किसी और की निंदा करके आत्मशान्ति का अनुभव करता है । जब कोई अच्छा काम होता है 'वाह वाह' होती है तो महिलायें कहेगी, ''ये मेरे हसबण्ड ! पिछले चार महिने से खाने-सोने का कोई ठिकाना नहीं । तब कोई नहीं आता था । अब तुम्हारे भाई की (उनके हसबण्ड-पतिदेव की) वाह वाह होने लगी न ? बस यश लेने के लिए सब सामने आने लगे । यह तो काम करे कोई यश लूटे कोई, ऐसी बात है ।''

और जो कहीं गड़बड़ हुई तो कहेंगे... 'तुम्हारे भाई तो पहले से ही कहते थे कि इस प्रकार नहीं होता । पर यहाँ उनकी सुनता कौन है ? अच्छा होता है तो सब यश लूटने आते हैं ओर 'मेहता साहब कहते गलत हुआ तो कहेंगे कि सब बेकार । 'घोटाला हुआ तो मरे महेता !' और पकौडे खाने के लिए सब इकठ्ठे होंगे... पर ये अधिक समय तक नहीं चलेगा ।

मेरे हसबण्ड हैं न । अर्थात् सब गुप्त रखते हैं । बाकी तो बहन ! न बोलने में नौ गुण !!! यह अपने टिपीकल स्वभाव के कारण ही ऐसा टिपीकल ब्लैकमेल करते हैं ।' निंदा अर्थात् किसी की पीठ पीछे बुराई करना इतना ही नहीं, इसके लिए बडे स्वामीजी (स्वामी शिवानंदजी महाराज) हमेंशा कहते, 'give up Idle gossiping and scandal backbiting.' 'अभिमान छोड़ो सेवा करो' निंदा किसी की हम किसी से भूलकर भी ना करें । दिव्य जीवन हो हमारा तेरे यश गाया करें ।'

एक सड़ा आम दूसरे अच्छे आमों को भी सड़ा दे, उसी प्रकार निंदक समाज की शान्ति ओर सभ्यता-सौजन्य को भी बिगाड़ दे । एक गंदी मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है, उस प्रकार की यह बात है ।

जब कि कबीरदासजी तो कहते हैं कि; 'निंदक नियरे रखिए', निंदक को पास में रखने के लिए इसलिए कहते हैं जिसे हम अपना जीवन सावधानी से जी सकें जिससे अपने जीवनमें जाले न लगें । निंदक समाज के लिए तो उपयोगी होता है यद्यपि वह अपना ही गड्ढा खोदकर अपना ही अहित भी करता है ।

संतों ने चार प्रकार के निंदकों की निंदा की है । (१) वे लोग जो विवाह के बाद पढ-लिखकर माँ-बाप के खरचे से अपना बंगला बनाते हैं और ऊपर से कहते हैं, 'हमारे माँ-बाप ने हमारे लिए क्या किया, उन्होंने जो किया अपने स्वार्थ के लिए किया ।' ये लोग कृतघ्न होते हैं । (२) कुछ लोग स्वस्थ और अच्छे होने के बाद डॉक्टर की निंदा करते हैं, 'रहने दो न, डॉक्टर ने हमारी चमड़ी उधेड डाली, हमें उल्टे छुरे से मुंड दिया ।' (३) किसी के सांझे के व्यवसाय में रहो ओर जब निकल जाओ तब शेठ की खूब निंदा करना । (४) स्कूल के गुरुजी के पास हम ज्ञान प्राप्त करते हैं बाद में स्कूल या आश्रम से उन्हें निकाल देते हैं । अथवा तुम संस्था या आश्रम छोडकर जाओ तो आश्रम के संचालक या गुरु की बुराई, निंदा करके उनका हृदय व्यथित हो ऐसी बातें करना, यह सब निंदनीय है ।

हम निंदक के प्रति शुभ भाव इस लिए रखते हैं कि यदि उसने हमारी निंदा न की होती तो हमें अपने दोष दिखाई ही न देते । शायद ही हम

अपने दोष देखते हों । अतः यदि कोई हमारे दोष हमें दिखाता हैं, तो हमें सबके सामने उसका आभार मानना चाहिए ।

'निंदक लागे मोहे नीको... बाकी जगत है फीको । निंदक हमारी काशी साधो, पाप गये हैं विनाशी' वगैरह । यह निंदा न करें केनी रे, इसके पश्चात् नरसिंह वाणी को निर्मल रखने की बात करते हैं । जब कि हम अपनी वाणी को अश्लील और अभद्र रखते हैं । संतों ने कहा है, 'सत्यं वद, धर्मं चर-सत्य का पालन ही धर्म का पालन हैं ।' वैसे तो दूसरों के साथ व्यवहार करने के लिए ऐसा भी कहा है, 'सच बोलो, मीठा बोलो-अप्रिय-असत्य न बोलो ।' पूज्य विनोबाजी कहते हैं : 'कम बोलो, आवश्यक हो उतना ही बोलो ।' यदि वाणी पर संयम हो तो निंदा करने का प्रश्न ही नहीं होता ।

वाच काछ निश्चल राखो

हमारी पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेंद्रियाँ है । इसमें जीभ कर्मेन्द्रिय ओर ज्ञानेन्द्रिय दोनो है । आँख दो हैं, कान दो हैं, नासिका के दो छिद्र हैं, दो हाथ, दो पैर, फिर भी ये सब एक-एक काम करते है जबकि ये जीभ एक है फिर भी दो काम करती है इसलिए जीभ पर संयम रखो 'वाच-काछ (मन) निश्चल राखो' ऐसा नरसिंह कहते हैं ।

आगमो में सुन्दर बात कही हैं, 'गुरुस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यस्तुच्छिन्न संशयः' गुरु के मौन में ही शिष्य के संशय दूर होते हैं । श्रुति कहती हैः 'शान्तोऽयम् आत्मा' आत्मा का स्वरूप शान्त है । जो व्यक्ति आत्मस्थ हो वह बड़बड़ाहट़ कभी नहीं करता । समुद्र के किनारे पानी छिछला होता है इसीलिए लहरें शोर करती हैं । बीच समुद्र में पानी खूब गहरा होता है इसलिए वहाँ समुद्र शान्त होता है । एक बार 'सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म' का ज्ञान होना अर्थात् मौन, वहीं सच्चा वैष्णवत्व प्रकट होता है । ईश्वर और ब्रह्म परमोच्च शान्ति के स्वरूप हैं । मौन यह तो हृदय की भाषा है । ब्रह्म की भाषा है । आत्मा की भाषा है । वाक् शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है । नरसिंह मेहता वाणी और चरित्र की शुद्धता का आग्रह रखते हैं क्योंकि जीभ और जननेन्द्रिय ये दोनों एक ही रस तन्मात्रा में से प्रेरित होती है ।

इसी लिए पूज्य डोंगरे बापू कहते थे 'जिसने जीभको जीत लिया उसने जग को बस में कर लिया और जिसकी वाणी कटु, जहरीली होती है वह उसे जगत का बैरी बना देती है । वे कभी-कभी ये भी कहते थे कि जो लोग पकौड़े और भेलपूरी के रसिया होते हैं वे ब्रह्मचर्य कैसे पाल सकते हैं ? जीभ पर नियंत्रण केवल वाणीशुद्धि के लिए ही नहीं अपितु आत्मसंयम का सर्वोच्च साधन भी है ।'

मनुष्य जब दुःख, यातना, पीड़ा और निराशा से दुःखी होता है तब वह अपना दुःख सबके पास जाकर व्यक्त करता है । इससे वह समझता है कि मैंने अपनी व्यथा दूर कर दी । परन्तु आज समाज में दूसरों के दुःख-व्यथा सुनकर अपना दुःख बढ़ाने में रुचि किसे है ? जब मनुष्य स्वयं दुःखी है । तब दूसरों का दुःख सुनने में किसे रस हो सकता है ? अतः दुःख के समय मौन रहना ज्यादा उचित है । **Wait and Watch !**

प्रतीक्षा करो और सोचो कि कुदरत ने हमारे भाग्य में दुःख भोगना ही लिखा है । हम अपने कर्मो के फल से मुक्त नहीं हो सकते । भूतकाल को याद करने से कोई लाभ नहीं । जब तक दिशा स्पष्ट न हो, तब तक हवाई किले बाँधने से कोई लाभ नहीं । अतः वर्तमान की प्रत्येक पल का सदुपयोग करो । वर्तमान में जीना सीखो । यह वर्तमान ही हमारे भविष्य का निर्माण करता है ।

कम बोलना, आवश्यकतानुसार बोलना, सत्य बोलना - यही वाचा या वाणी के संयम हैं, इससे शक्ति का संचय होता है । लोग तो सूर्योदय से सूर्यास्त तक मौन रखते है । फोन पर ह-हुं, अूं ऐसा बोलें तो ये गलत नहीं, बुरा भी नहीं, परन्तु पूर्ण और योग्य भी नहीं है । बहुत से लोग मौन रखते हैं एक महिने का, एक वर्ष का, और सारे दिन स्लेट-पेन लेकर घूमते हैं और लिख-लिख कर अपनी बात बताते हैं । कुछ लोग इशारे से बात करते हैं । हाथ की हथेली में दूसरे की उँगली से लिखते हैं । इससे सामने वाले को कठिनाई होती है और मौनी को सबसे ज्यादा परेशानी । यथार्थ जीवन जीयें, ऐसे आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं है । वाणी हमारी मित्र है । और वाणी ही अपनी शत्रु । कुछ लोगों को बडबडाते सुना

है । 'मेरा स्वभाव भी गडबडवाला है... नहीं बोलना फिर भी बोल जाता हूँ ।' बोलने के बाद पछताने से क्या फायदा ? इससे तो न बोलना अच्छा । बिलकुल चुपचाप होकर बैठना भी ठीक नहीं, चार प्रश्न पूछो तो इच्छा हो तो जवाब दे, नहीं तो बोले ही नहीं । इस प्रकार के व्यक्ति अपने आपको कुछ ज्यादा ही होशियार समझते हैं परन्तु ऐसा नहीं है । तुम इस प्रकार के व्यवहार से सामने वाले का अपमान करते हो । अनुचित जवाब न दें, बिलकुल मौन भी न रहें परन्तु उत्तेजित हुए बिना to the point आवश्यकतानुसार बोलें तो ये वाणी का संयम है । फिर भी हम बड़बड़ाना बंद करें तो अच्छा है । शारीरिक शान्ति है । आरम्भ में ऐसा स्थूल मौन उचित है । मन बोलने के लिए बेचैन होगा, भले हो । जब हम न बोलने का निर्णय करें तो नहीं बोलना चाहिए । पहले स्थूल मौन का अभ्यास करें, फिर काष्ट मौन आयेगा । काष्ट मौन अर्थात् ईशारे भी नहीं, लिखना भी नहीं, आँखों से भी कुछ न कहना । यह आत्मस्थ स्थिति का अभ्यास है । ऐसा मौन अंतःकरण को जाग्रत करता है जो वैष्णव होने के लिए अति आवश्यक है । कबीरदासजी कहते है : 'अन्दर बाहर सम करी जाने, वो ही साहेब को पहचाने' फिर वहाँ छल-कपट नहीं ।

टागोरजीने सुन्दर बात कही है :

अन्तरमम विकसित करो, अन्तरतर हे ।
निर्मल करो, उज्ज्वल करो, सुन्दर करो हे ॥ १ ॥
जाग्रत करो, उद्यत करो, निर्भय करो हे ।
मंगल करो निरलस करो, निःसंशय करो हे ॥ २ ॥
युक्त करो है सबार संगे, मुक्त करो हे बंध ।
संचार करो सकल कर्मे शांत तोमार छंद ॥ ३ ॥
चरण पदे मम चित्त निष्पंदित करो हे ।
नंदित करो, नंदित करो नंदित करो हे ॥ ४ ॥

काष्ट मौन, वाक्वाणी का संयम आत्म उन्नति का प्रवेशद्वार है ।

जो लोग बहुत बोल-बोल करते हैं वे सदैव अशान्त रहते हैं । समुद्र पार के देशों में कहीं भी चार लड़कों को म्युनिसिपालिटी के खम्भे के

नीचे खड़े रहकर गप्पे मारते नहीं देखा । हमारे सौराष्ट्र में रात-दिन खम्भे के नीचे खड़े होकर, चबूतरों पर, गाँव की चौपाल पर, लोग इकठ्ठे होकर व्यर्थ की बातें करते दिख सकते हैं और बे सिर पैर की बातों में अपना समय बर्बाद करते हैं । अपनी टी.वी. चेनल भी इससे अलग नहीं है । कहीं कोई घटना घटी जैसे कोल्डड्रिंक कम्पनी ने एक स्कूल में बच्चों के लिए चित्र स्पर्धा आयोजित की । एक बाला को एकदम उल्टी हुई । शाला के प्रबन्धक उसे डॉक्टर के पास ले गये । बच्ची के अभिभावक को बुलाया गया । अभिभावक ने पुलिस में फरियाद की । पुलिस ने मीडिया को खबर दी । चेनल की टीमें केमेरा लेकर आ गई । बालिका ठीक है, स्वस्थ है । बैठकर आनन्द, किल्लोल कर रही है । फिर भी जीवित का पोस्टमार्टम ? क्या हुआ ? बोतल में क्या था ? कितना पानी था ? उसका रंग कैसा था ? उसका स्वाद कैसा था ? ढक्कन के उपर जंग लगी हुई थी ? उसमें कड़वाहट थी ? दुर्गंध कैसी थी ? इससे पूर्व स्कूल में तुम्हें कभी उल्टी हुई ? उल्टी कहाँ हुई ? स्कूल में ? स्कूल के बाहर ? दालान में ? पेड के नीचे ? उल्टी का रंग कैसा था ? उसमें केवल कोल्डड्रींग निकली या सुबह का नास्ता भी ? तुझे अब चक्कर आ रहे हैं ? रोना आ रहा है ? पेट में दर्द है ? सिर में दर्द है ? ऐसे लोगों को मीडिया छोडकर सी.आई.डी. में होना चाहिए । यह समाज की शान्ति में अशान्ति पैदा करने के अलावा और कुछ नहीं ।

अधिकांश लोगों को विविध भाषा सीखने ओर बोलने का शौक होता है । ठीक है, पर बिना आवश्यकता के, बिना किसी प्रसंग के, भाषा के ज्ञान का प्रदर्शन करने का उद्देश्य क्या ? जो मनुष्य रात-दिन व्यर्थ की बातें करता है वह सच और सत्य कम तथा अनर्गल और झूठ अधिक बोलता है । इस प्रकार जोड़-तोड़ कर गप्पें हांकने की वृत्ति दुःखदायक ही होती है ।

जिनका पढ़न, मनन, चिंतन विशाल है, गहन है उन्हें गप्पें मारना पसन्द नहीं । अतः सुभाषित में कहा गया है, 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् व्यसनेन तु मूर्खाणाम् निद्रया कलहेन वा.' जो लोग

बुद्धिमान हैं वे काव्यशास्त्र और उसमें रहे ज्ञान की चर्चा में ही अपना समय व्यतीत करते हैं। दुःख की बात है कि मूर्ख लोग व्यसन, निद्रा और कलह में ही अपना जीवन व्यर्थ करते रहते हैं।

वाणी के साथ ब्रह्मचर्य पालन करने का निर्देश है। काछ का अर्थ कच्छा (लंगोट) परन्तु यहाँ ब्रह्मचर्य पालन का निर्देश है। 'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।' ब्रह्मचर्य के अभ्यास से ओज, तेज ओर प्रज्ञा का विकास होता है। यहाँ ब्रह्मचर्य का अर्थ स्पष्ट रूप से जननेन्द्रिय पर संयम पर ही भार दिया है। इससे पूर्व 'परस्त्री जेने मात रे' कहकर नरसिंह भी ब्रह्मचर्य के लिए आत्मसंयम की ही बात कहते हैं।

सोक्रेटीस के पास आकर एक युवक ने कहा कि, मेरा विवाह होने वाला है, और आप ब्रह्मचर्य पालन की बात कहते हो तो मुझे स्त्री संग करना या नहीं ? सोक्रेटीस ने उत्तर दिया 'हाँ यदि विवाह कर रहे हो तो जीवन में एक बार तो स्त्री संग अवश्य करना।' पर ऐसा कैसे चलेगा ? यह प्रश्न पूछने पर सोक्रेटीसने कहा, 'अच्छा तो वर्ष में एक बार।' परन्तु शादी के बाद मनुष्य इस प्रकार कैसे रह सकता है ? तुरन्त सोक्रेटीसने कहा, 'कबर खोद, उसमें अपनी पत्नी को लेकर सो जाओ।'

धन्वन्तरी ने अपने शिष्यों को सुखद स्वास्थ्य, दीर्घायु, शरीर सौष्ठव, प्रज्ञा में वृद्धि एवं बुद्धि में तेज के रहस्य को समझाते हुए कहा, 'वीर्यवान बनो' वीर्य अर्थात् आत्मबल, तपबल, बाहुबल, बुद्धिबल एवं पौरुष की अविछिन्न धारा का प्रभाव।

वीर्य का उपयोग सन्तान उत्पत्ति के लिए है। व्यर्थ में बेकार करने के लिए नहीं। वर्तमान विज्ञान एवं तथा कथित मानसिक उत्कर्ष ओर उत्थान की दृष्टि आजकल ब्रह्मचर्य के पालन में नहीं मानती। 'कहता भी दीवाना, सुनता भी दीवाना' पाश्चात्य विद्वान भी ब्रह्मचर्य पालन का पक्ष लेते हैं। वे भी आत्मसंयम में मानते हैं। जब कि वर्तमान डॉक्टर एवं मनोचिकित्सको का ऐसा विचार है कि यदि स्त्री संग और किसी भी प्रकार के प्राकृतिक या अप्राकृतिक रीति से वीर्य का क्षय न किया जाय तो मनुष्य का दिमाग खिसक जाने की पूरी सम्भावना है। यद्यपि आचार्य शंकर, महावीर

हनुमान, अरबिन्द, स्वामी शिवानंदजी या विवेकानंदजी आदि में से किसी के दिमाग के छटकने का समाचार नहीं मिलता। जिसने जीवन में ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा की है उनकी त्वचा का सौन्दर्य चहरे पर निखार, वाणी में ओज, उनकी मेधाशक्ति, स्मरणशक्ति, चिंतन, मननशक्ति, सहनशीलता, आत्मसंयम सभी का विकास होता है। परन्तु जो ज्यादा कामुक होते है, उनका स्वभाव जिद्दी, छिछला और क्रोधी होता है।

आयुर्वेद वीर्य को सप्त धातु कहता है। अन्न में से रस; रस में से रक्त, रक्त में से मांस और मांस में से चर्बी, चर्बी से मज्जा और मज्जा से वीर्य बनता है। जिस प्रकार कली से पुष्प, पुष्प में से पराग तथा पराग से मधु-मध बनता है, उसी प्रकार वीर्य से बल, बुद्धि और विद्या उत्पन्न होतें है। वीर्य व्यय से लोगों के शरीर कमजोर, आँखे गठ्ठे में घुस जाती हैं और कम आयु मे जोड़ो में दर्द तथा अन्य रोगों के शिकार हो जाते हैं।

यह वाणी ओर ब्रह्मचर्य मन से सम्बन्धित हैं। 'मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः' मन ही मानव जीवन के बंधन ओर मोक्ष का कारण है।

मन

जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षी चाहे जब आये, बैठे ओर उड़ जाय, वैसे ही मन में चाहे जब, चाहे जैसी परिस्थिति में विचार आते रहते है। श्रुतियों ने शरीर को रथ की उपमा दी है। शरीररूपी रथ की इन्द्रियाँ घोड़े हैं, बुद्धि सारथी है, मन लगाम है और जीवरूपी आत्मा रथ की मालिक अन्दर बैठी है। सारथी लगाम के द्वारा घोड़ों को काबू में रखता है। इस प्रकार घोड़ा, लगाम, बुद्धि सब अलग-अलग होने पर भी, मन का ऐसा नहीं है। मन कोई एक अलग अंग जैसे कि हृदय, फेफड़े, लिवर, किडनी, पेन्क्रीयाज जैसे नहीं है। यदि शरीर का पोस्टमार्टम किया जाय तो मन कहीं नहीं मिलेगा और न दिखाई देगा; फिर 'मन के हारे हार, मन के जीते जीत' हमारा मन चंचल है। अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से फरियाद की। 'यह मन बहुत चंचल है, ज़क्की है, जिद्दी है क्या करुं ?' चंचलं ही मनः कृष्ण प्रमादि बलवद्दृढम्, श्री कृष्ण कहते हैं, 'शनैः-शनैः मन को काबू में रखने का प्रयत्न करो।' 'यतो-यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्' जब-जब मन इधर-उधर भटके तब स्वस्थता से बार-बार अपने लक्ष्य पर केन्द्रित करो।

एक साँढ मदमत्त हो तो उसके पास नहीं जाना चाहिए । वह सींग मारेगा । जीवन खतरे में होगा । परन्तु प्रतिदिन, नियमित एक ही समय पर समान ढंग से हरी-हरी घास लेकर जाओगे तो उससे पहचान हो जायेगी, फिर उसके पास जाने में कोई खतरा नहीं । उसके बाद इसी प्रकार घास खिलाओ, फिर हमेशा के लिए मित्रता करो उसके बाद आप उस पर सवारी कर सकते हैं । मन की मित्रता बिना वैष्णवत्व सम्भव नहीं । राग-द्वेष मन में ही उत्पन्न होते हैं । मन में ही काम-क्रोध पैदा होते हैं । मन ही लोभ-मोह का जनक है । इसलिए मन पर नियन्त्रण करना पड़ेगा ।

हमारा बाह्य शरीर - पाँच कोषों से बना है । इसमें अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, ज्ञानमय कोष और विज्ञानमय कोष हैं । उसमें यह मन बाह्य स्थूल भौतिक शरीर की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म है । जो अपने मन पर मनोविजय कर सकता है । इस मन में ही बुद्धि शक्ति को अतःकरण में जाग्रत कर सकती है । इस मन में ही बुद्धि, चित्त ओर अहंकार समाहित है, जिसमें विचार आयें और जायें, उसे मन कहा जाता है । जो विचारों पर तर्क करे उसे बुद्धि और जो विचारों का संग्रह करे, वह चित्त और विचारों पर अटल रहे वही सच्चा मन है । मन मदोन्मत्त होकर कहे - 'मेरा ही सत्य' यह अहंकार है । जिस प्रकार जो शक्ति विश्वसर्जन करे, उसे ब्रह्मा, जो पालन करे वह विष्णु और जो संहार (विसर्जन) करे वह शिव कहलाते हैं । उसी प्रकार त्रिमूर्ति कहने पर भी वह एक ही है । दूध, दही, माखन और घी यह सब भिन्न-भिन्न होते हुए भी मूल एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुए है । इसी प्रकार मन भी सूक्ष्म अहंकार से जनित हुआ है ।

मल, विक्षेप और आवरण ये तीनों मन की ही विकृतियां है । पुराने संग्रहित संस्कार ही मन का मैल है । उसी प्रकार अकारण, अनिच्छा से जीवन यावन में विडम्बनाएँ पैदा करे, वह विक्षेप है । और यह विक्षेप ही जीवनयापन में रुकावट पैदा करता है वही आवरण है । इन तीनों विकारों से मुक्ति, प्राणायाम और जप से सम्भव है । यदि वैष्णव हरिभजन में तद्रूप, तन्मय, तदाकार रहे तो प्राणायामेन किल्बीषाम्; प्राणायाम द्वारा मन के

मैल और आवरण का नाश होता है । प्रभु स्मरण से मन का मालिन्य दूर होकर जीवन सार्थक बनता है इसीलिए ऐसा कहा गया है कि 'धन-धन जननी तेनी रे ।'

समदृष्टि

'समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी' कहकर नरसिंहने साम्यवाद की नींव रखी है । यह समदृष्टि वेदान्त की उपलब्धि की सर्वोच्च सीढी है । स्थितप्रज्ञ और साक्षी-चैतन्य विषयक प्रवचन करना बहुत ही सरल है । शायद अपने गुजरात में जितने व्याख्याता तथा कथाकार होंगे, उतने भारत के दूसरे प्रान्तों में शायद ही हों । एक महिला कवियित्री को हमारे आश्रम के वार्षिकोत्सव में प्रवचन देने के लिए निमन्त्रण दिया । उसके सभी भक्त उसे माँ कहते थे । वह जहाँ जाये वहां २०-२५ भक्तों को अपने साथ ले जाये । सभी भक्त प्रथम पंक्ति में बैठें ओर हर एक-डेढ़ मिनिट पर तालियां बजायें । किस लिए ? इससे क्या होता है ? हमारे कार्यकारी प्रमुख आये । वे 'मां' के समिप कुर्सी पर बैठ गये । मानो उन्हें कोई झटका लगा हो, वे एकदम खड़ी हो गई ओर कुर्सी आगे करके अलग बैठ गई । इस पंक्ति में गुजरात राज्य के महामहिम राज्यपालश्री, तदुपरांत कई मण्डलेश्वर और उनके अलावा रामायणी महिला भक्तिमती माता थीं । इन सबसे मेरी बैठक अलग । कहा- 'हम पुरुषों के साथ नहीं बैठते ।' अब तक कोई एतराज नहीं था । अब क्या हुआ ? देखिये ये निंदा या टीका नहीं है, निरीक्षण है ।

एक दूसरे संन्यासी के प्रवचन बहुत प्रसिद्ध थे । उनका ऐसा आग्रह था कि मैं नाट्यभवन, थियेटर अथवा बन्द दरवाजे वाले ओडिटोरियम में ही व्याख्यान करुं । मेरे आने से पहले श्रोता अपनी बैठक ले लें, यह आग्रह तो समझ में आता है मगर एक दम पिन ड्रोप साईलैन्स के बीच में वे कह रहे थे, 'साक्षी बनो । साक्षी बनो । नगरपालिका का लाइट का खम्भा किसी की बारात को देखकर अधिक प्रकाश नहीं देता, किसी की अर्थी की बारात को देखकर अपना प्रकाश कम नहीं करता । दोनों स्थितियों में आत्मस्थ, बाह्याडम्बर, दम्भ और छल से अलग । जिस समय

यह संन्यासी महोदय बोल रहे थे उसी समय श्रोताओं में से किसी को छींक आई । अब छींक तो प्राकृतिक है लेकिन वक्ता महोदय खडे हो गये ओर चीखकर पूछने लगे- 'कौन है ? उसे बाहर निकाल दो ।' लोगों ने संन्यासीजी को बहुत समझाया परन्तु वे तो कहने लगे 'यदि वह व्यक्ति स्वयं खड़े होकर बाहर नहीं जाता तो उसे उठाकर बाहर फैंक दो ।' अरे भाई । ऐसा कहीं होता है ? नरसिंह इस वृत्ति से अपरिचित नहीं थे । श्री कृष्ण, वेद वेदान्त सभी मनुष्यों के छल दम्भ और दिखावे की रीति-नीति से परिचित हैं । ओर इसका कारण हमारे अन्दर विराजमान वाक्चातुर्य के प्रदर्शन की भावना है । पुनः कहता हूँ यह निंदा नहीं है और बदबोई भी नहीं, चरित्रचित्रण है । महाभारत में दुर्योधन के सद्गुण और दुर्गुण का वर्णन है तो युधिष्ठिर के सद्गुण और दुर्गुणों का चरित्र-चित्रण भी है ।

समदृष्टि तब तक नहीं आयेगी जब तक 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' की भावना हृदय में न प्रकटे । भगवान भाष्यकार ने इसीलिए 'द्वन्दातीतं त्रिगुण रहितं तत्वमस्यादि लक्ष्यम्' इस प्रकार कहा है । मेरा-तेरा उँच-नीच, काला-सफेद, मैं ओर तू, गरीब-अमीर ये सब द्वन्द्व हैं । इनसे अलग होना ही पड़ेगा, साधना बिना शक्य नहीं है । समग्र संसार की रचना सत्, रज, तम से ही हुई है । कहीं एक कम तो कहीं दूसरा अधिक । परन्तु जो आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है उसे सावधान होना पड़ेगा । वहाँ समाधान नहीं चलेगा । इसीलिए नरसिंह एक अन्य पद में कहते हैं, 'ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्त्यो नहीं त्यां लगी साधना सर्व जूठी ।' मानव शरीर की सार्थकता ही व्यर्थ हो गई जैसे कि वे मौसमी बरसात में जैसे वर्षा का प्रकोप बढ़ जाता है... । नरसिंह मेहता एक समदृष्टि के बारे में कहते है, 'वेद तो एम वदे, श्रुति स्मृति साख दे, कनक कुण्डल विषे भेद न्होये. घाट घडिया पछी नाम रूप जूजवां अंते तो हेमनुं हेम होय... वृक्षमां बीज तुं, बीजमां वृक्ष तुं, जोऊ पटंतरो ऐज पामे... पवन तुं, पाणी तुं, भूमि तुं भूधरा... अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्री हरि... इतनी बात समझ में आ जाय तो वह सच्चा वैष्णव है । बाकी 'जो बात भज गोविंद स्त्रोत'

में श्री आदि शंकराचार्यजी ने कही है, वही सत्य नरसिंह भी छत पर चढ़कर पुकार कर कहते हैं, वेद और व्याकरण के अध्ययन से क्या लाभ ? षटदर्शन की साधना से भी क्या लाभ ? ये सब पेट भरने के प्रपंच है, परम ब्रह्म तो आत्मस्थित है । नरसिंह कहते है इस तत्त्व को समझे बिना मूल्यवान मानव जन्म व्यर्थ हो जाता है । यह नरसिंह द्वारा प्रस्तुत वैष्णव जन अथवा तत्त्व चिन्तामणि प्राप्त व्यक्ति का शब्द चित्र है ।'

नामदेव भी गोरा कुम्हार के टीपने से व्यथित हुए थे, 'क्या हम घड़े हैं जो तुम हमें टीपकर पता लगाते हो ?' तब गोराने कहा 'अरे तुम ही एक कच्चे घड़े हो ।' उसी नामदेव की सूखी रोटी लेकर जब एक कुत्ता भाग गया तो नामदेव भी घी की कटोरी लेकर दौड़े । यह है समदृष्टि । हम अपने प्रति लोगों से जिस प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं वैसा ही श्रेष्ठ व्यवहार, सदाचरण दूसरे लोगों के साथ करना चाहिए । परन्तु हमारे अंदर एक चाणक्य बैठा हुआ है, 'लेना हो तो तुरन्त ले लेंगे और देना हो तो आराम से देंगे ।' यह नीति वैष्णव जन की नहीं है ।

वैष्णव सरल होता है । उसका जीवन छल-कपट रहित होता है वह शुद्ध स्फटिक मोती के समान होता है । उसके जीवन में कृष्ण के बिना सब कुछ क्षणभंगुर है, की स्थिति होती है । एक कथा के अनुसार श्री हनुमानजी मोतियों की माला को तोड़ते हैं । क्यों तोड़ते हैं ? इसलिए कि जिस मोती में श्रीराम न हो वह मेरे लिए व्यर्थ है... 'जागत राम ही, सोवत राम ही, सपने में देख्यो राजा राम ही...' गुरु की कृपा से मैंने इस तत्त्व को प्राप्त किया है कि राम के बिना कुछ नहीं है... वैष्णव जन की स्थिति ऐसी होती है । समदृष्टि की स्थिति ।

अब वह तृष्णा छोड़ने के लिए कहते है । यह तृष्णा भी बड़ा अटपटा शब्द है । श्रुति कहती है कि, 'एकाकी न रोचते सः द्वितीयं ऐच्छत ।' प्रभु को अकेला रहना अच्छा न लगा । अपनी इच्छासे उन्होंने माया उत्पन्न की । अर्थात् प्रभु की इच्छा में से माया और इच्छासे हम जनमे । माया की इच्छा हमारी स्वामीनी है । और हम इच्छा के दास हैं । जब तक मनुष्य में इच्छा हो वहां तक तो कोई कठिनाई नहीं है । परन्तु इच्छा से पूर्व हमारे अन्दर

कामना-वासना-तृष्णा पैदा होती है तो अन्ततः यह तृष्णा हवस में परिवर्तित होती है। तृष्णा हवस का बीज है और हवस जीवन में ह्रास या अधोगति की नींव है। उपर्युक्त चर्चा के अनुसार श्रीराम ओर श्रीकृष्ण ने अपनी जीवन यात्रा के आरंभ में ताड़का और पूतना का वध किया था। वह ताडका और पूतना साधारण राक्षसी न होकर व्यक्ति के जीवन की तृष्णा हैं। जो व्यक्ति अपने जीवन में ऐसा भाव रखता है - 'अयं विशेषः' अर्थात् मैं कुछ ऊँच मनुष्य हूँ, उसे त्याग और तपस्या द्वारा वासना का क्षय करना चाहिए।

जब तक वासना का क्षय नहीं होता तब तक मोक्ष सम्भव नहीं है। यह मोक्ष जैसा परम पद वैष्णव जन।

इसलिए गीता कहती है :

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति॥

जो व्यक्ति अपनी समस्त कामनाओं का त्याग करके और इच्छा, ममता तथा अहंकार रहित होकर विचरण करते हैं, वे ही शान्ति प्राप्त करते हैं।

रन्ति देव की प्रार्थना है :

नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःख-तप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम्॥

मुझे कुछ नहीं चाहिए। न स्वर्ग, न मोक्ष। परन्तु हाँ ! जो प्राणी दुःख से पीड़ित हैं, उनके दुःख दूर करो। हे प्रभु ! अन्त में कह सकते हैं कि,

न जातु कामात् न भयात् न लोभात्,
धर्म त्यजेत् जीवित स्यापि हेतो :।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुः अस्यत्वनित्यः॥

किसी भी प्रकार की इच्छापूर्ति के लिए भय, लोभ या प्राणों की रक्षा के लिए भी धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि धर्म ही नित्य है। सुख दुःख तो थोड़े समय के लिए है। आत्मा ही नित्य है। इस शरीर को पुनः

बंधन में बाँधना नहीं। शरीर तो नश्वर है। यह सनातन सत्य है। 'पूर्ण ब्रह्म नारायणी' ऐसा श्री श्री माँ आनन्दमयी कहतीं। इसी लिए अपने संतो ने गाया है कि, 'सत का मारग है शूरा का... नहीं कायर का काम।' वैष्णवत्व अर्थात् नरसिंह जैसी टोपी और ललाट पर लम्बा तिलक, हाथ में करताल... यह तो उनका वेश है। ऐसा करने वाले सभी वैष्णव नहीं कहे जाते। तृष्णा का त्याग किया नहीं जाता अपने आप जाती है। श्री रामकृष्ण परमहंस देव कहते है : 'जब बहू को गर्भ रहता है तो सास उससे काम कम कराती है। जैसे-जैसे महिने अधिक होते जाँय सास उसका काम कम करती जाती है। तत्पश्चात् जब प्रसव हो जाय तब सभी काम बन्द करा देती है केवल संतान का ही ध्यान रखे। जैसे-जैसे भक्ति में डूबते जाओगे वैसे-वैसे ही कर्म बन्धनों और विकारों का क्षय होता जायेगा। जब पूर्ण वैष्णवत्व की प्राप्ति हो जायेगी तब 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न होई।' एक तू ही ऐसा रटन शुरू होगा...' तृष्णा निवारण का एक ही मार्ग है। मल-विक्षेप आवरण के बाद ही षट् सम्पति की प्राप्ति होती है। शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान। वासनाओं का शमन होता है। इन्द्रियों का दमन होता है। तब ठण्डी, गरमी, भूख-प्यास सभी के प्रति उदासीनता आ जाती है। ईश्वर के प्रति निष्ठा बढ जाती है। प्रभु के प्रति श्रद्धा और विश्वास दृढ़ हो जाते है। और व्यक्तिगत चैतन्य समष्टिगत चैतन्य में परिवर्तित हो जाता है। इसके बाद ही सर्वत्र ब्रह्म के दर्शन होते हैं। तब मिसरी ओर मिठास में भिन्नता नहीं रहती, एक हो जाते हैं।

सत्यं वद धर्मं चर

भगवान के विविध अवतार जैसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि उत्क्रान्ति के प्रत्यक्ष उदाहरण है। एक कोषीय जीव से बहुकोषीय जीव तक की यात्रा हमें इस बात का आभास कराती है कि पशु-पक्षी, जड़चेतन सभी में ईश्वर का अस्तित्व है; इसी लिए तो हम तुलसी और पीपल को पूजते हैं। नागपूजन और गौपूजन करते हैं। गोवर्धन की पूजा करते हैं। हमारे भगवान नदी में गंगा, पहाड़ों में हिमालय और जलाशयों में समुद्र है और नक्षत्रो में सूर्य भी है। विश्वप्रेम, विश्वबन्धुत्व

ये हमारी राहबर भारतीय संस्कृति और संस्कारों की परम्परा है । इस महान ज्ञान के अमृत का एक ही काम है - तृष्णा का क्षय करना । मोह का पाश तोडना, मन का नाश करना । इसके बाद प्रत्येक स्त्री में मात्र दुर्गा, काली, भगवती, अम्बामाता का भाव दिखाई देगा । हमें यह नहीं कहना पड़ेगा 'परस्त्री जेने मात रे,' पराई स्त्री तो माता के समान है ही ।'

'जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे...' की बात अब गौंण हो जाती है । व्यक्ति स्नातक, स्नातकोत्तर पदवी प्राप्त कर लेता है उसे विद्यालय में पाठ पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती । यदि घर में रोज झाडू-पौंछा न हो तो जाले लग जाते हैं उसी तरह जीवन की अन्तिम घडी तक 'सत्यं वद धर्मं चर' की बात माननी ही चाहिए । क्योंकि सत्य ही ईश्वर है । 'सत्यमेव जयते नाऽनृतम्' सत्य की ही जय है । अमृत असत्य की कभी विजय नहीं होती और जहां सत्य है वहीं श्रीकृष्ण है । 'यतो कृष्णः ततो जयः' और जहां श्रीकृष्ण है वहीं विजय है । इस विजय का अर्थ कोई डंका-निशान नहीं है । 'सत्यान्नाऽस्ति परोधमः' सत्य के सिवाय कोई दूसरा धर्म नहीं है । ईश्वर को ही सच्चिदानंद रूप कहा है - यह सत्-चित् और आनन्द ही शाश्वत चिरन्तन, स्थायी है वही वैष्णव का मार्ग सत् का मार्ग है । सत्य जीवन की भूमिका पर प्रतिष्ठित हुआ मार्ग है । सत्य ही ब्रह्म है । सत्य ही परमतत्त्व है । सत्य ही जीवन का परम सार है ।

जीभ सरस्वती का आसन है जिस आसन पर जो देवता विराजमान होते हों, उस पर यदि किसी अन्य देवता को बैठा दें तो उस देवता का अपमान माना जायेगा । हम अपने ठाकुरजी के वस्त्रों को अलग रखते हैं, उनका तौलिया, रुमाल, थाल, भोजन या पूजा का पात्र - किसी अन्य व्यक्ति के उपयोग में नहीं लेते । इसी प्रकार जीभ से हरिस्मरण करना है, प्रभु का गुण गाना है उस जीभ से असत्य भाषण, कटु भाषण और किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए । लेकिन हमारा कोई बस नहीं चलता । गुजराती व्यापारी महामण्डल के स्वर्णजयन्ती समारोह के अवसर पर दिल्ली के श्री यशवंत सिन्हा, श्री संगमा एवं अहमदाबाद के एक व्यापारी तथा

मुझे बोलना था । मुझे सबसे बाद में बोलना था । जो व्यापारी मुझसे पहले बोले, उनसे मेरा कोई परिचय नहीं था । उन्होंने अपने प्रवचन में कहा - 'पूछिये इन स्वामीजी से, इनके आश्रम में दान कौन देता है । यदि हम काला बाजार न करें तो, बंगला कैसे बनें ? गाडियां भी न दौड़ें और मन्दिर या आश्रम का भी निर्वाह न हो.... अरे ! इस भगवान की दुकान भी काले बाजार से ही चलती है... वगैरह ।' उनको अपने विषय पर बोलने की छूट तो है परन्तु ऐसी विशाल सभा में ऐसे महापुरुषों की पंक्ति में बैठकर ऐसा छिछला वक्तव्य देने की कोई जरूरत नहीं थी । हमें अपने प्रवचन में किसी के बारे में निम्नकोटि के विचार या अशिष्ट व्यवहार व्यक्त करने की क्या आवश्यकता है ? मैंने अपने उद्‌बोधन में कहा, 'पू. दासकाका हमारी कार्यकारीणी के सदस्य और अध्यक्ष हैं उनकी टोपी या कपडों में कोई दाग नहीं लगा । उनका जीवन एक सरल रेखा की तरह है । उन्होंने मेरे द्वारा चैक से लाखों रूपयों का दान सेवाकीय संस्थाओं या अस्पतालों को दिया है । एक दिन अहमदाबाद से दिल्ली की फ्लाईट में तीन युवक, जो कपड़े के व्यापारी थे, शराब पीकर अशोभनीय आचरण कर रहे थे । मेरी बैठक उन्हीं की लाईन में थी । मैंने उनसे पूछा- क्या आप कपडे के व्यापारी हैं ? तो हमारे पिताजी कपड़े का व्यापार करते हैं । मैंने पूज्य दासकाका और उनके संतानो का उल्लेख किया । इन तीन व्यापारियों का नशा, दासकाका का पवित्र नाम सुनते ही उतर गया अर्थात् यदि हम व्यापार करते हैं तो यह जरूरी नहीं है कि हमें काला बाजार करना ही पड़े, एक के दस करने ही पड़ें । एक दिन एक सज्जन का फोन आया । मैं आपसे मिलना चाहता हूँ । मैंने कहा, 'अभी आ जाओ ।' उसने कहा 'मैं अभी सरकारी टूर से आया हूँ । सब बिल ठीक करने हैं । दो दिन के बाद आउँ तो ?' मैंने कहा, 'तो मत आना ।' क्योंकि जो बिल सच्चे हों तो हिसाब १५ मिनिट में हो सकता है । परन्तु बेईमानी करनी होगी; उलट-सुलट करनी हो तभी तो दो दिन चाहिए । उस व्यक्ति की ईमानदारी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थी । वह आकर मिल गया । अनीति के आचरण के मार्ग से बच गया ।

यही तो असत्य से बचना और दूसरे के धन से मोह न करना है। अभी हाल में गत मास वेटीकन के प्रतिष्ठित पोप ने एक निर्देश जारी करके सात नये पापों को शामिल किया। छठी शताब्दी के बाद ईसाई परिवार में पहली बार इन नये पापों को शामिल किया गया था। उन्होंने पहला और सबसे बड़ा जो पाप बतलाया उसके विषय में मीडिया ने बहुत उहापोह किया, 'यदि आप अधिक धनवान होंगे तो वह एक पाप है। नरसिंह ने यह बात ५२५ वर्ष पहले कही थी। उपनिषद ने यह बात युगों पूर्व कही थी... किसी अन्य के धन की इच्छा न रखो।'मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।' हमारी संस्कृति में किसी के धन को हड़प कर बैठ जाना - इसके लिए ऐसा कहा गया है कि उस धन पर सर्प कुंडली मार कर बैठा है। स्वयं के लिए उस धन का उपयोग नहीं है और दूसरों को भी उस धन का उपयोग नहीं करने देता। घास के ढेर पर बैठा हुआ कुत्ता न तो स्वयं घास खाता है (वह घास खा भी नहीं सकता), और थके हुए बैल को घास खाने भी नहीं देता। जीवन की यह कितनी बड़ी विडम्बना है।

नरसिंह के चिन्तन का यह 'वैष्णव जन' पद अद्‌भुत है। यदि हम एक ही पद को समझ सकें तो जीवन में उन्नति और आत्मोत्कर्ष के सब द्वार खुल जाँय।

फिर मोह माया के बन्धन भी नहीं रहेंगे, और मन में दृढ वैराग्य भी उत्पन्न होगा। महाभारत के युद्ध के मैदान में भीष्म के लुढकने के बाद, धृतराष्ट्र, संजय से पूछते हैं, 'मामकाः पाण्डवाश्चैव' उसकी ओर पाण्डवों की इतनी अधिक दुर्दशा होने पर भी मेरे-तेरे की भावना से धृतराष्ट्र मुक्त नहीं हुआ ? हमारे ब्रह्मलीन स्वामी प्रेमानन्दजी हमेशां कहते, यह माया (MAYA) अर्थात् My Action and Your Action.

'यह मेरा है यही तेरा है.' यही माया है। श्री रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि जब दो भाई खेत के बीच में खड़े होकर एक लम्बी लकीर खींचते हैं और कहते हैं 'यह मेरा खेत, वह तेरा खेत' तब शायद भगवान भी हँसता होगा। शायद रोता भी हो। इसी लिए संतोंने कहा है, 'यह नहीं तेरा यह नहीं मेरा, ईश्वर का यह राज्य है।' 'ईशावास्यम् इदम् सर्वम्...'

'त्वमेव सर्वं मम देव देव...' 'जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वत मस्तके...' ज्वालमालाकुले विष्णुः... विष्णु पंच महाभूतों में ही है। इस जगत में जो भी कुछ है उसके अन्दर-बाहर एक मात्र वही है। प्रयत्न करिए। जप, ध्यान, आत्मसंशोधन, साधना, श्री सद्‌गुरु की शरणागति, ये सब एकत्रित हों तो हरि दूर नहीं है।

फिर न तो मोह रहेगा, न माया। शेष रहेगा 'सत्यं ज्ञानं अनंतम् ब्रह्म, एकं अद्वितीयं ब्रह्म' हमारे शिवानन्द आश्रम ऋषिकेष में एक स्वामी विवेकानन्द थे। संन्यास से पहले वे सुभाषचन्द्र बोस के A.D.C. थे। जब सुभाषबाबू कलकत्ता से बर्मा, रंगून गये तब उनसे मुम्बई जाने के लिए कहा गया. मुम्बई में वे 'फ्री प्रेस जर्नल' में थे। संन्यस्त के पश्चात् आश्रम के प्रिन्टिंग प्रेस में प्रूफ रीडिंग की सेवा देते थे। उन्हें प्रोस्टेट ग्लाण्ड का केंसर हो गया था। रोग बढ़ता गया। उन्होंने अपनी वेदना, पीड़ा की शिकायत एक दिन भी नहीं की। एक दिन रात को १० बजे कहा मुझे अस्पताल में ले जाइए। पैदल चलकर स्वयं एम्ब्युलैंस में बैठ गये। अस्पताल आश्रम में ही था। वहां उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा, 'पूज्य श्री स्वामी चिदानन्दजी महाराज (आश्रम के अध्यक्ष) से कहिए कि मुझे अब वे शरीर त्यागने की अनुमति दें।' पूज्य स्वामीजी महाराज वहां त्वरित पहूँचे।

स्वामी विवेकानन्दजी की शैय्या के पास बैठकर एक हाथ विवेकानन्दजी के सिर पर रखकर ओर दूसरा हाथ छाती पर रखकर स्वामीजीने पूछा - 'ईपडी ईरक।' कैसे हैं ? उत्तर में विवेकानन्दजीने हाथ जोड़कर कहा... सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म, एकं एवं अद्वितीयं ब्रह्म। ॐ ॐ ॐ और उनके प्राण पखेरू उड़ गये। यह दृश्य मेरी दृष्टि के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है। यह अद्‌भुत जीव तर गया। वास्तव में उनको मोह माया नहीं थी। शरीर से भी उन्हें कोई मोह या बन्धन नहीं था। वे जीवनमुक्त जीव थे। शारीरिक वेदना से भी वे 'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचित् अपि चिंतयेत्' की महादशा में वे रहे। शारीरिक कैन्सर की भयंकर वेदना, कितनी पीड़ा होती होगी, ये तो जिसे रामबाण लगा हो वही जाने। उन्हें

मोह माया नहीं थी वैसे ही उन्हें विवेक का आनन्द था परन्तु वैराग्य भी भरपूर था ।

भक्ति पदारथ मोटुं

साधारणतः रोटी, कपड़ा, मकान की सभी सुविधा हों तब मनुष्य के मन की गहराई का आभास मिलना बड़ा दुर्लभ है । मनुष्य जब चारों ओर से संकट में फँस जाय और तब वह मानसिक स्वस्थता या संतुलन बनाये रखे, तभी उसकी सच्ची कसौटी है । 'वैष्णव' पल भर का जीवन नहीं है, थोड़ी देर के लिए रंगमंच पर खेला जाने वाला नाटक नहीं । विश्व के रंगमंच पर यह वैष्णवत्व एक बहुत लम्बा पात्र है जो उसे राग के सूत्रों में बंधकर नहीं बल्कि वीतराग के रंगों में भीगकर खेलना है । राग तो चाहे जहाँ से आ सकता है । वीतराग के लिए जरूरी है - जीवन संघर्ष ।

संगीत का एक साधन हो उसे हम सितार, वीणा, मृदंग, दिलरुबा, जलतरंग के विविध नामों से जानते हैं । ये विविध वाद्य संगीत के साधन हैं । ये संगीत नहीं, इसमें संगीत पैदा किया जाता है । षडज, रिषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद के स्वर किन्तु वादी, सम्वादी, शुद्ध, वर्जित इस प्रकार स्वरों की श्रृंखला में से संगीत ध्वनित होता है । हमारा जन्म हुआ है, मृत्यु भी होगी क्योंकि मृत्यु अपरिहार्य है । हम लोग जो भी कुछ कर रहें है वह मृत्यु की मंज़िल तक की यात्रा ही समझिये, जीवन नहीं । जीवन एक संघर्ष है । वह कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, प्राण, तन्मात्रा, महाभूत और अन्तःकरण चतुष्टय के वेश में ढला हुआ एक ढांचा मात्र है । केवल पुतला; उसमें प्राणों का संचार करना पड़ता है । हम जाग्रत और प्रामाणिक प्रयत्नों के द्वारा जीवन की धुरी का नया आयाम देते हैं । हमें वहाँ वैष्णवत्व की खोज करनी पड़ेगी । यह वैष्णवत्व अब तक की गई चर्चा के बीच उलझ गया है । यहाँ पर जल्दबाजी से काम नहीं चलेगा, शान्ति की आवश्यकता है । एक बीज एक डिब्बी में बन्द हो तो वह बीज ही रहेगा ।

वह बीज यह न समझे कि मैं वृक्ष हूँ वह कभी भी वृक्ष में परिणित नहीं हो सकता । उस बीज को धरती में जाना ही पड़ेगा । नीचे की गरमी उपर की ठंडक उसे सहन करनी पड़ेगी । इसके बाद मुख्य बात यह है कि

उसे अपना अस्तित्व खोना पड़ेगा । उस बीज को मिटना पड़ेगा, टूटना, फूटना पडेगा तब वह अंकुरित होगा । तब उसका सिंचन करना पड़ेगा । तब उसमें से पौधा और वर्षो के बाद वह विशाल वृक्ष में परिवर्तित होगा । वैष्णवत्व प्राप्त करने के लिए भी ऐसी ही साधना-उपासना की जरूरत पड़ती है । मोह-माया और दृढ वैराग्य । मोह-माया से निवृत्ति और दृढ वैराग्य के लिए प्रवृत्ति । परन्तु यह सब हमारे अपने हाथ की बात नहीं है । खेत जोतें; गुड़ाई कीजिए, कूढ़ा साफ कीजिए और दाने बोइए, लेकिन यदि सिंचाई न की जाये तो ? राम-नाम की ताली भी बजानी पड़ेगी । नरसिंह इसीलिए कहते हैं, 'भूतल भक्ति पदारथ, मोटुं ब्रह्म लोक मां नाहि रे...' भक्ति के विषय में नरसिंह स्पष्ट हैं - 'हरि ना जन तो मुक्ति ना मांगे, मांगे जन्मोजनम अवतार ।' नित सेवा, नित कीर्तन, ओच्छव, निरखवा नन्द कुमार रे... इसे भक्ति कहते हैं । यहां मुक्ति की आकांक्षा नहीं है । रन्तिदेव भी, 'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।' कहकर राज्य, स्वर्ग या पुनर्जन्म की इच्छा नहीं करते । वे सेवा की कामना करते हैं । श्री सद्गुरुदेव स्वामी शिवानन्दजी महाराज के समकालीन सन्तों में से एक स्वामी तपोवनजी महाराज उत्तर काशी में रहते थे । वे स्वामी शिवानन्दजी से कहते - 'आप बहुत सेवा करते हैं । यदि वैकुण्ठ से विमान आए तो मुझे भी लेते जाइए ।' स्वामी शिवानन्दजी प्रसन्नता से उत्तर देते । 'मुझे वैकुण्ठ जाने की जल्दबाजी नहीं है मैं विमान आपके यहां ही भेज दूंगा । जब तक इस पृथ्वी पर एक भी व्यक्ति मुक्ति के लिए संघर्ष करेगा तब तक उसे मोक्ष दिलाने की साधना में मदद करूँगा, और अन्त में मैं वैकुण्ठ जाऊँगा ।' इसे राम-नाम की ताली कहते हैं । हमने श्रीराम को अपने मन्दिर की चार दीवारों में बंद कर रखा है जबकि श्रीराम जड़-चेतन सभी में है... सकल सृष्टि राममय है । यदि ऐसे राम से प्रेम किया जाय तो वैष्णवत्व हमारे शरीर को ही देवता बना देगा । 'सकल तीरथ तेना तन मां रे' ऐसे वैष्णवों के लिए हमारे यहां 'जंगमतीर्थ' शब्द प्रयुक्त हुआ है । शाश्वत चिरन्तन ब्रह्म का सर्वत्र दर्शन, उसकी दिव्य अनुभूति और उसी के अनुसार सरल सहजता से स्पन्दित जीवन अर्थात् वैष्णव जना ।

नरसिंह को अभी भी शंका है । मनुष्य नदी पार करे और किनारे पर पहुँचने से पहले डूब जाय । उड़ीसा के ब्राह्मणों के लिए एक कहावत है कि उनको सोने से मढा हाथी दान में दो । उस हाथी पर सोने का सिंहासन रखो । उस सिंहासन पर भूदेव को बिठाओ । उसके ऊपर सेवक सोने का छत्र पकड़कर खड़ा रहे और फिर भूदेव को बिदा करो । जिस मण्डप में दान दिया जाता है उन मण्डपों के बाहर स्वस्तिक पूजा के लिए केले के स्तम्भ रखे जाते हैं । मंगलघट अर्थात् नया घडा, घडे के उपर आमके पत्ते और चोटीवाला नारियल रखा जाता हैं । तब ये भूदेव स्वर्णमण्डित हाथी पर, सोने के सिंहासन पर बैठकर, द्वार पर स्थित आम्रपल्लव और कदलीस्तम्भ सब कुछ ले जायेगा । कदली स्तम्भ और आम्रपल्लव हाथी के लिए और नया घड़ा ठण्डा पानी पीने के लिए, तदुपरान्त नारियल हम स्वयं पीयेंगे ।

गीता में वर्णित दैवासुर संग्राम योग अध्याय में दैवी और आसुरी गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नरक में ले जाने के तीन द्वार है - काम, क्रोध ओर लोभ । भाष्यकार भगवान आदि शंकराचार्यजी ने कहा है, 'ये तीन काम, क्रोध और लोभ नामक चोर अपनी ज्ञानवृत्ति को चुराने के लिए बैठे हैं । इसलिए सावधान रहना चाहिए । 'तस्मात् जाग्रत-जाग्रत ॥'

नरसिंह कहते है 'वण लोभी ने कपट रहित जे...' इस लोभ का कोई अन्त नहीं है । श्री द्वारिकाधीश के मन्दिर में अनेक ब्राह्मण देवता होते हैं । शरीर पर रेशमी वस्त्र, वक्ष पर रेशमी अंगरखा, हाथ में हीराजडित तीन स्वर्ण मुद्रिकाएँ, कमर में सोने की तगड़ी, हाथ में सोने की पौंची, गले में सोने का हार और कान में इत्र का फोआ, मस्तक पर लम्बा वैष्णव तिलक - ये सब श्रीकृष्ण के भक्त कहे जाते हैं, इसलिए वैष्णव ही हुए । परन्तु नरसिंह को ये वैष्णव रुचिकर प्रतीत नहीं हुए । क्योंकि मन्दिर में आने-जाने वाले यात्री जब भिखारियों को रुपया - आठ आना बांट रहे हों, वहां ये वैष्णव भी लम्बा हाथ करते रहते हैं । नरसिंह इनके दर्शन से दुःखी हुए होंगे ।

नरसिंह कहते हैं, श्रीकृष्ण और वैष्णव के बीच में एक परदा है, वह है लोभ । एक शब्द है, लाभ यहां 'ल' के बाद 'ला' अर्थात् एक का दुगुना, इस प्रकार लाभ शब्द बनता है । परन्तु 'ल' में से 'लो' तक पहुंचने के लिए आठ सीड़ियां चढनी पड़ेंगी । एक के आठ बनाना यह लोभ है । नरसिंह सज्जन हैं । वे सज्जनता में मानते हैं । उनके लिए लोभ दुर्जन का भूषण है । इसीलिए 'वणलोभी ने कपट रहित छे... काम, क्रोध निवार्या रे ।' ऐसा कहा है कि कामना के बिना मनुष्य रह ही नहीं सकता । इसलिए हरिदर्शन की कामना रखनी चाहिए । प्रभु के दर्शन सर्वत्र करो ओर सर्वत्र सर्व जड़-चेतन की सेवा करनी चाहिए । नित्य प्रातः उठकर... हरिस्मरण का लोभ रखना चाहिए । जब रात छ घड़ी शेष रहती है, तब साधू लोग शैय्या त्याग देते हैं । अपने प्रमाद पर नियन्त्रण रखो ।

हम बचपन से ही एक सज्जन को जानते हैं । एक बार उसने हमसे कहा । 'थोड़ी पिसी मिर्च लाओ तो ।' हमने उसे कटोरी भरकर मिर्च दिये । इसके बाद हम अपना कार्य करने लगे । परन्तु इस महापुरुष ने एक चुटकी मिर्च कटोरी में से लेकर अपनी आंखों में डाल लिया । बड़ा कठिन कार्य था । कुछ समझ में नहीं आया कि क्या करें ? आंख में पानी छीडक कर जितना निकल सकता था निकाला । फिर नजदीक के डॉक्टर के पास ले गये । डॉक्टरने हमें डांटा । कुछ और मांगा होगा । तब वह भाई बोले : ना, ना, मैंने मिर्च ही मांगी थीं । बरफ घिसा । आंखें घुलवाई । तीन दिन के बाद ठीक हुआ । फिर शान्ति से हमने उनसे पूछा । 'आंखों में मिर्च क्यों डाली ? इतनी बड़ी रामायण हुई ।' वह शान्ति से बोले । 'पडौसी की लडकी को काम-वासना से देखी थी, इसलिए आंखों को सजा दी !!!'

यह बात सतयुग की नहीं है, मात्र चालीस वर्ष पहले की है । ऐसे प्रामाणिक जीवन के कारण ही वैष्णवत्व जीवित रहा है । उस मित्र के शब्दों में आडम्बर नहीं था । छल ओर कपट का तो सवाल ही नहीं उठता । फिर भी कितना भयंकर । काम की जागृति में क्रोध अपने ऊपर ही । और फिर जो सत्य था वही कहा । इसमें जरा भी कपट नहीं था ।

लोभ पाप का मूल है । गीता में कहा है कि लोभ आत्मा का हनन करने वाला दुर्गुण है । ओर ऐसे ही क्रोध और काम हैं । नरसिंह यहां चौथा तत्त्व कपट रहित होना बताना चाहते हैं । इस बात को हमें समझना चाहिए ।

एक दिन संध्या के समय एक साधू गांव के मन्दिर में आकर रहा । मन्दिर के पास ही नदी बहती थी । साधू सुबह उठा । नदी में स्नान किया । किनारे पर एक शिला पर ध्यान करने बैठ गया । इसी शिला पर गाँव का धोबी रोज कपड़े धोता था । धोबी आया, कपडे धोने वाली शिला पर तो महाराज ध्यानस्थ थे । धोबी को लगा कि महाराज जागेंगे । इसलिए धोबी आवाज करने लगा । पानी में छप-छप करने लगा । फिर महाराज के ऊपर पानी डालने लगा और अन्त में महाराज को धक्का मारा । महाराज का मौन टूटा । मानो ठण्डी से जमा हुआ आकाश फट गया हो । पहले वाक् युद्ध हुआ फिर शारीरिक ! दोनों पक्ष घायल हुए, त्रस्त हुए । धोबी पूरब में बैठा था महाराज पश्चिम में । इन महाराज का एक अंतरंग व्यक्ति (भूत) भी वहां बैठा था । उस भूत ने दु:ख व्यक्त किया और पूछा-आपको बहुत चोट तो नहीं लगी ? दूख तो रहा होगा ? महाराज ने कहा- जब वह मुझे मार रहा था तब तुम कहां गये थे ? भूत ने कहा 'बापजी ! यहीं पर था ।' तो फिर बचाने क्यों नहीं आया ? 'बापजी ! बचाने आया था परन्तु इस परस्पर युद्ध में मुझे मालूम नहीं पड़ा कि धोबी कौन है ओर साधू कौन है ?'

साधुता और वैष्णवत्व की हमारी आयु कपट में ही बीत गई । काम, क्रोध पर नियन्त्रण नहीं किया । हम लोग मथुरा भाई-दौज पर स्नान करने का मनोरथ करते हैं, लेकिन क्या हम ट्रेन में आते समय सद्भावपूर्ण, मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्वाह करते हैं ? क्या परोपकार करते हैं ? क्या परपीड़ा से पीड़ित होते हैं ? परस्त्री के प्रति मातृत्व की दृष्टि रखते हैं ? वाणी और ब्रह्मचर्य का संयम है ? या फिर मथुरा में दही-बडे ओर कचौड़ी और वृन्दावन में रबड़ी, जो अहमदाबाद में नहीं मिलती, खाने के लिए जाते हैं । ये सारी बातें गम्भीर चिन्तन की अपेक्षा करती है ।

वैष्णवत्व नरसिंह के लिए केवल कल्पना मात्र नहीं है अपितु वह उसका समूचा जीवन दर्शन है । नरसिंह समाज से कोई आशा या आकांक्षा नहीं रखते क्योंकि नरसिंह के तथाकथित निजी लोगों ने ही नरसिंह के प्रति धिक्कार, घृणा, शारीरिक मानसिक यातना का भाव ही रखा था । परन्तु नरसिंह का हृदय उससे उद्विग्न नहीं हुआ था । वह गम्भीर, शान्त जीवन के धनी है । वे श्रीकृष्ण की कृपा ओर भवनाथ महादेव की कृपा के पात्र बने थे । नरसिंह मेहता संकुचित वृत्ति के वैष्णव नहीं; जिन्हे 'शिव' का उच्चारण करने मात्र से कृष्ण के द्वार बन्द हो जायें । नरसिंह को तो भवनाथ के भगवान भोलानाथ महादेव और श्रीकृष्ण और उनकी रासलीला के दर्शन साथ ही हुए । उनके मन में महादेवजी स्वयं श्रेष्ठ वैष्णव हैं । नरसिंह का वैष्णवत्व भक्ति के मुक्त आकाश में ऊंची उड़ान भरने वाला, नित्य सत्य, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, ज्ञान, प्रकाश ओर विकास से अपनी प्रत्येक श्वास में सर्वत्र श्रीकृष्ण का दर्शन करता था । विनम्रता से सेवा ओर परोपकार में जीवनयापन करने वालें वैष्णव हैं । नरसिंह के वैष्णवत्व का तिलक सेवा के चन्दन से निर्मित है, प्रभुस्मरण का टीका है, परोपकार का मुकुट धारण किया है ओर विनम्रता का कम्बल ओढ़ा है । नरसिंह की वैष्णव दृष्टि जड-चेतन में विद्यमान परमात्मा को सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान पुष्पों की माला पहनाता है । नरसिंह का वैष्णव प्रतिदिन नित्य सहजता के जल से स्नान करता है । नरसिंह के वैष्णव के जनेऊ के तीनों तार निष्काम, निर्लोभ और अक्रोध के हैं । इसीलिए आज पाँच शताब्दियों के बाद भी नरसिंह जीवित है, जाग्रत है, स्वस्थ है । भक्ति के मार्ग में प्रकाश स्तम्भ की भांति प्रकाश बिखेरता है । नरसिंह स्वयं कहते हैं कि 'भणें नरसैयो तेनुं दरशन करतां कुल एकोतेर तार्या रे ।' नरसिंह का वैष्णव पक्का परोपकारी है । अपनी भक्ति के द्वारा अपने इकहत्तर वंशों का कल्याण करता है । नरसिंह ब्राह्मण तो थे लेकिन भक्ति के व्यापार में चक्रवृद्धी व्याज के साथ व्यापार करने वाले पक्के व्यापारी भी थे ।

ॐ शान्ति ।

श्री शिवानंद आश्रम के कार्यकलाप

1. प्रार्थना एवं आरती : प्रतिदिन प्रात: - सायं 7.00 बजे
2. दैनिक सत्संग : प्रतिदिन रात्रि 9.00-9.45 बजे
3. विशेष सत्संग : प्रतिदिन रविवार प्रात: 9.30 बजे
4. गुरुपादुका पूजन : प्रति गुरुवार प्रात: 8.30 बजे
5. चिदानंद आध्यात्मिक पुस्तकालय एवम् वाचनालय : प्रति दिन प्रात: 10.00-1.00 बजे, सायं 4.30-6.30 तक
6. शिवानंद साहित्य भंडार : प्रति दिन प्रात: 7.00-12.00 तक, सायं 4.30-6.30 तक
7. श्री शिवानंद चिकित्सालय
   - योग चिकित्सा केन्द्र : बुधवार, शुक्रवार, सायं 7.30-8.30 तक
   - एक्यूप्रेशर केन्द्र : सोम से शुक्र, प्रात: 10.30-11.30 तक
     मंगल से शुक्र, सायं 5.30-6.30 तक
8. होमियोपेथी औषधालय: सोम, मंगल, शुक्रवार, सायं 5.00-7.00 तक
9. योगासन कक्षायें : प्रतिदिन प्रात: 5.30-6.45 बजे
   प्रात : 7.00-8.00 तथा 10.30-11.30 बजे
   सायं 4.00-5.00 बजे (केवल महिला)
   सायं 6.00-7.00 तथा 7.00-8.00 बजे
   प्रशिक्षु वर्ग प्रतिमाह 1 से 10 ता. प्रात: 5.30-7.00 बजे
   15 से 25 ता. सायं 6.30-7.45 बजे
10. विश्वनाथ सेवा केन्द्र : निर्धन परिवारों को अन्नदान, प्रति माह दूसरा रविवार

11. गायत्री यज्ञ : माह का प्रथम रविवार प्रात: 7.15 बजे
12. रेकी कक्षायें : प्रतिमाह दो दिन
13. मृत्युंजय जप : रविवार प्रात: 7.00 बजे से सायं 5. 00 बजे
14. सिलाई कक्षायें : 1.30 से 4.00 बजे (महिलाओं)
15. नारायण सेवा : प्रति माह की 3 ता. को बच्चों को भोजन वितरण
16. चिदानंद ध्यान-योग केन्द्र : मौन ध्यान तथा जप, प्रतिदिन प्रात 6.00 से रात्रि 8.00 बजे तक
17. ललिता सहस्त्रनाम पारायण : पूर्णिमा 4.30 बजे से 5.30 बजे तक
18. संगीतमय सुंदरकांड पारायण : प्रति शनिवार 5.30 से 7.30 बजे तक
19. श्री विश्वनाथ मंदिर एवं श्री अष्टलक्ष्मी भवन : प्रात: 5.45 से दोपहर 12.00 बजे तक तथा अपरान्ह 4.30 से रात्रि 9.00 बजे तक

कृपया पूजा करवाने के लिये कार्यालय से संपर्क करें।

नोट : संस्था को किया गया दान आयकर अधिनियम की धारा 80(G) के अन्तर्गत आयकर से मुक्त है ।

ॐ

स्वामी अध्यात्मानंदजी

दिव्य जीवन संघ की स्थापना परम पावन श्री स्वामी शिवानंदजी महाराज द्वारा सन् 1936 में हुई। संस्थाके द्वितिय प्रमुख पूज्य श्री स्वामी चिदानंदजी महाराजके के श्री स्वामी अध्यात्मानंदजी प्रिय शिष्य है। स्वामीजी ने जनवरी, सन् 1971 को संन्यासी जीवन में प्रवेश किया तथा सन् 1974 में विधिवत् संन्यास ग्रहण किया। तब से निरंतर अपने पूज्य गुरुदेव के आदेशानुसार वे पुरातन ऋषियों के संदेश - हमारी पुरातन सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक धरोहर - को योग, प्राणायाम तथा ध्यान के माध्यम से प्रचारित एवं प्रसारित करने में लगे हुए हैं। अब तक वे विश्वभर में 700 से अधिक योग शिबिरों का आयोजन- संचालन कर चुके हैं। पिछले 50 वर्षों से वे ओल इन्डिया रेडियो पर नियमित प्रसारण करते रहे हैं तथा पिछले 40 वर्षों से भी अधिक समय से दूरदर्शन के माध्यम से योग शिक्षा के प्रसार में योगदान कर रहे हैं।

कुछ ही समय पहले अपनी हीरक जयंती समारोह के उपलक्ष्य में दीन-दुःखियों के प्रति अपने अथाह प्रेमवश, उन्होंने 230 रक्तदान शिबिरों का आयोजन किया, जिनमें 69,542 रक्तदाताओंने 208,628 लाख मि.लि. रक्तदान किया। वे स्वयं भी सौ से अधिक बार रक्तदान कर चुके हैं। प्रकृति तथा पर्यावरण के प्रति अपने प्रेमवश उन्होंने विश्वभर में एक करोड़ से अधिक वृक्षारोपण किये हैं।

अपने संन्यासी जीवन के 38 वर्षों में उनके गीता, उपनिषद, श्रीमद्भागवत् इत्यादिक विषयों पर सर्वग्राह्य भाषा में दिये गये प्रवचनोंने दसियों लाख श्रोताओं को मंत्रमुग्ध तथा प्रेरित किये है। अपने करुणा-आप्लावित हृदय तथा सहानुभूतिपूर्ण पावन स्पर्श से उन्होंने पूर्व तथा पश्चिम के युवाओं को नशे की लत से मुक्त होने की प्रेरणा प्रदान करके उनके अंधेरे जीवन में एक नवप्रभात का उदय किया है।

विश्वविद्यालयों, कोयले की खदानों, सैनिक बलों, प्रशासनिक सेवाओं में, मैदानी क्षेत्रों से लेह, कारगिल, पूँछ, दुर्गम पहाड़ी इलाकों तक, अपने योग शिबिरों के माध्यम से, वे राष्ट्र की अनथक सेवा में कार्यरत हैं। अपने भगीरथ प्रयासों से उन्होंने योग के प्रचार-प्रसार द्वारा अनगितन व्यक्तियों के जीवन को सँवारा-सुधारा है। उनका जीवन संपूर्णता प्राप्ति के लिये सतत संघर्ष की मिसाल है। वे प्रत्येक अर्थ में एक सच्चे कर्मयोगी हैं। परिचित-अपरिचित, हर एक की सेवा के लिये वे सदैव तत्पर रहते हैं। वर्तमान में वे शिवानंद आश्रम, अमदाबाद तथा गुजरात दिव्य जीवन संघ के अध्यक्ष हैं।

Print Vision